।। श्री हरिः ।।

श्रीमद्वराहमिहिराचार्यविरचितं

लघुजातकम्

श्रीमद्भट्टोत्पलकृतसंस्कृतटीकासहितम् ।

काशीस्थ-श्री काशी ज्योतिर्वित्समितिमन्त्रि-

दैवज्ञवाचस्पति-श्रीवासुदेवकृत-

सविशेष-सोदाहरण-भाषाव्याख्यया च संभूण्य

सम्पादितम्

प्रकाशक : –

ठाकुर प्रसाद पुस्तक मन्दिर

हड़हा सराय, वाराणसी - १

सन् १८८२ ई.

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ संख्या
मुख पृष्ठ	१
विषयानुक्रमणिका	२
राशिप्रभेदाध्याय: १	
मङ्गलाचरण	८
ग्रन्थप्रयोजन	८
कालपुरुष के वर्ण	९
राशियों के वर्ण	१०
राशियों की पु. स्त्री संज्ञा दिशाज्ञान	१०
मेषादि राशियों एवं नवांशो के स्वामी	१३
होरा-द्रेष्काण-द्वादशांश के स्वामी	१४
त्रिशांश के स्वामी	१६
राशियों की द्विपदादि संज्ञा	१८
राशिबल	१८
लग्नादिभाव संज्ञा	१९
केन्द्रादि संज्ञा	२०
उपचय तथा वर्गोत्तमनवांश	२०
राशियों के दिन-रात्रिकाल,	२१
शीर्षोदय पृष्ठोदयत्व	२१
ग्रहों के उच्च-नीच और त्रिकोणस्थान	२२
ग्रहों की षड्वर्ग संज्ञा	२३
ग्रहभेदाध्याय: २	
ग्रहों के आत्मादि विभाग	२५
दिशा स्वामी तथा पाप और शुभग्रह	२६
ग्रहों की पु. स्त्री संज्ञा तथा वेदों के अधिप	२६

विषय		पृष्ठ संख्या
ब्राह्मणादि वर्णों के अधिप		२७
ग्रहों के स्थानबल		२७
ग्रहों के दिग्बल, चेष्टाबल		२८
ग्रहों के कालबल		२९
ग्रहों के नैसर्गिकबल		३०
ग्रहों के स्थानबल		३०
ग्रहों के दृष्टिस्थान		३०
	ग्रहमैत्रीविवेकाध्याय: ३.	
मित्रामित्र में अन्य आचार्यों के मत		३२
सत्योक्त नैसर्गिक मित्रामित्र		३२
मित्रामित्र से पञ्चधामैत्री कथन		३५
	ग्रहस्वरूपाध्याय: ४	
सूर्यादि ग्रहों के स्वरूप		३६
प्रयोजन		३९
	गर्भाधानाध्याय: ५	
आधानलग्न से संभोग ज्ञान		४०
आधान लग्न से दीप का ज्ञान		४०
गर्भाधान से जन्मकाल का विचार		४१
प्रसव सम्भव में विशेष		४१
गर्भाधानकालिक अशुभयोग		४२
आधान से १० मासों में गर्भ के रूप और फल		४३
आधान लग्न से गर्भ का ज्ञान		४४
गर्भ में पुत्र, कन्या का ज्ञान		४५
पुत्र, कन्या, यमल योग		४५
विशेष		४६

विषय		पृष्ठ संख्या
	सूतिकाध्याय: ६	
ग्रहों के सत्त्वादिगुण		४८
जातक के गुण-वर्णादि		४८
पिता के परोक्ष में जन्म		४९
परजात जन्मयोग		४९
सूतिका के गृह का द्वार		५०
सूतिकागृह का स्वरूप		५१
सूतिकागृह के मञ्जिल और बरामदा का ज्ञान		५२
सूतिका की शैय्या का ज्ञान		५३
नालवेष्टिताङ्ग ज्ञान		५३
सूतिका के आभूषण-धातु आदि का ज्ञान		५४
उपसूतिका ज्ञान		५४
	अरिष्टाध्याय: ७	
अनेक प्रकार के अरिष्टयोग		५६
	अरिष्टभङ्गाध्याय: ८	
अनेक प्रकार के अरिष्टभङ्ग विचार		६२
	आयुर्दायाध्याय: ९	
ग्रहायुर्दाय		६६
लग्नायुर्दाय		६७
वर्गोत्तमादि में विशेष		६८
ग्रहों की आयु में हानि		६८
चक्रोत्तरार्धस्थित ग्रहों की आयु में हानि		६९

विषय	पृष्ठ संख्या
दशान्तर्दशाध्यायः १०	
दशा प्रमाण	७०
दशाक्रम	७०
ग्रहों की दशा में शुभाशुभता	७१
लग्न की दशा में शुभाशुभता	७१
अन्तर्दशाधिकारी	७२
अन्तर्दशा साधन प्रकार	७३
अष्टकवर्गाध्यायः ११	
सूर्यादि सप्तग्रहों के अष्टकवर्ग	७६
अष्टकवर्ग फलनिरूपण	८१
प्रकीर्णाध्यायः १२	
अनफा,सुनफा,दुरुधरा, केमद्रुमयोग	८३
अनफादि योग के फल	८३
अनफादि योगकारक ग्रहों के फल	८४
सूर्य से विशेष योग	८५
द्विग्रहयोग	८५
प्रव्रज्यायोग	८७
सूर्यादिग्रहों की प्रव्रज्या	८८
प्रव्रज्या योग में विशेषता	८९
चरादि राशिफल	९०
दृष्टिफल	९१
भावफल	९२
लग्नगत चन्द्रफल	९२
सूर्यफल	९३
भावफल में न्यूनाधिकता	९३
मेषादि नवांशजातकफल	९५

विषय	पृष्ठ संख्या
स्वगृह-मित्रगृहगत ग्रहों के फल	९६
स्वोच्चगत ग्रहों के फल	९६
नीचगत ग्रहों के फल	९७
राजयोग	९८
विषय कथन	९९
नाभसयोगाध्याय: १३	
रज्जु-मुसल-नल नामक आश्रय योग	१००
सर्प और माला नामक दलयोग	१००
मदा आदि हलपर्यन्त ५ योग और फल	१०१
वज्र आदि दण्ड पर्यन्त ८ योग	१०३
उक्त ८ योगों के फल	१०४
नौका आदि समुद्रपर्यन्त ७ योग	१०४
उक्त ७ योगों के फल	१०६
गोल आदि ७ संख्या योग	१०६
स्त्रीजातकाध्याय: १४	
स्त्री के आकार तथा लक्षण	१०९
पति सम्बन्धी विचार	११०
अशुभयोग	११०
ब्रह्मवादिनी योग	१११
विशेष	१११
निर्याणाध्याय: १५	
मृत्युकारक ज्ञान	११३
मरणान्तर गतिस्थान ज्ञान	११५
मोक्षयोग	११५
पूर्वजन्य वृत्तान्न	११६

विषय	पृष्ठ संख्या

नष्टजातकाध्याय: १६

लग्न और ग्रहों के गुणकाङ्क	११८
नक्षत्र ज्ञान	११९
वर्ष ऋतु-मास आदि का ज्ञान	१२०
वर्ष-ऋतु-मास-पक्ष-तिथि आनयन	१२१
दिन रात्रि तथा नक्षत्रानयन	१२२
इष्टकाल-लग्न-होरा-नवमांशानयन	१२३
प्रयोजन	१२४

।।श्रीः ।।

लघुजातकम्

ग्रन्थकारकृतमङ्गलाचरणम्—

यस्योदयास्तसमये सुरमुकुटनिघृष्टचरणकमलोऽपि ।
कुरुतेऽञ्जलिं त्रिनेत्रः स जयति धाम्नां निधिः सूर्यः ।।१।।

यस्योदयेति। सतामयमाचारो यच्छास्त्रप्रारम्भेऽभिमतदेवतानमस्कारं कुर्वन्ति। तदयमावन्तिकाचार्यवराहमिहिरोऽर्कलब्धवरप्रसादो ज्योतिः शास्त्र-सङ्ग्रहं कृत्वा तदेव भीरुणां कृते सङ्क्षिप्तगणितसङ्ग्रहं कृत्वा होराशास्त्रं सङ्क्षिप्तं वक्ष्यमाणोऽशेषविघ्नोपशमायाभिमतसूर्यस्यादौ प्रणाममाह—स सूर्य आदित्यो जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते। कथम्भूतो धाम्नां निधिः। यस्योदय-कालेऽस्तकाले च त्रिनेत्रो महेशः अञ्जलिं कुरुते, नमस्कारं करोतीत्यर्थः। कीदृशः सुरमुकुटनिघृष्टचरणकमलो देवचूडामणिनिघृष्टपादपद्म इत्यर्थः। यतः सर्वे देवा भगवतो नारायणस्य महादेवस्य पादवन्दनं कुर्वन्ति। अपिशब्दाद्यस्य महादेवोऽपि अञ्जलिं करोति तस्य सेन्द्राः सुराः महर्षयश्च वन्दनं कुर्वन्ति ।।१।।

जिनके उदय और अस्त के समय में देवताओं के भी प्रणम्य चरण–कमल वाले त्रिनेत्र (महादेव) भी हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं, ऐसे परम तेजस्वी भगवान् सूर्य विद्यमान हैं ।। १ ।।

ग्रन्थप्रयोजन—

होराशास्त्रं वृत्तैर्मया निबद्धं निरीक्ष्य शास्त्राणि।
यत्तस्याप्यार्याभिः सारमहं सम्प्रवक्ष्यामि ।।२।।

होराशास्त्रमिति। होराशास्त्रं वक्ष्यामीत्याह होराशास्त्रं–जातकं मया वृत्तैर्नानाविधैर्निबद्धं रचितम्। किं कृत्वा शास्त्राण्यन्यानि निरीक्ष्य विलोवय यत्तस्य सारमार्याभिः सम्प्रवक्ष्यामि कथयिष्यामीत्यर्थः ।।२।।

अनेक (गर्गादि मुनि प्रणीत) ग्रन्थों को सम्यक् देखकर मैं (वराहमिहिर) ने जो (विस्तार रूप में) होराशास्त्र (बृहज्जातक) रचा है, अब उसी के सारांश को बालकों के सुबोधार्थ आर्याछन्दों में कह रहा हूँ ।। २ ।।

ग्रन्थप्रयोजन—

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाऽशुभं तस्य कर्मणः पंक्तिम् ।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव ।। ३ ।।

यदुपचितमिति। शास्त्रोपयोगित्वमाह—प्राणिनां यदन्यजन्मनि शुभमशुभं वा कर्मार्जितं सञ्चितं तस्य कर्मणः प्राप्तिमेतच्छास्त्रं व्यञ्जयति प्रकटीकरोतीत्यर्थः। यस्मिन् काले शुभफलं यस्मिंश्चातोऽशुभफलमिति। क इव दीप इव। यथा दीपस्तमसि अन्धकारे द्रव्याणि विद्यमानानि व्यञ्जयति व्यवहारार्थम् ।।३।।

प्राणी पूर्व जन्म में शुभ या अशुभ कर्म जो भी करता है, उस कर्म के परिणाम को यह जाकतशास्त्र उसी प्रकार प्रकट कर देता है जैसे अन्धकार में पदार्थो को दीपक ।। ३ ।।

काल पुरुष के अङ्गविभाग—

शीर्षमुखबाहुहृदयोदराणि कटिबस्तिगुह्यसंज्ञानि ।
ऊरु जानू जङ्घे चरणाविति राशयोऽजाद्याः ।।४।।
कालनरस्यावयवान् पुरुषाणां चिन्तयेत्प्रसवकाले ।
सदसद्ग्रहसंयोगात् पुष्टाः सोपद्रवास्ते च ।। ५।।

शीर्षमुखेति। कालपुरुषस्य मेषादिराशिपूर्वकमङ्गविभागमाह—अजाद्या राशयः कालस्याङ्गानि। राशय इति फलितोऽर्थ। अस्य कालपुरुषस्य मेषः शिरः, वृषो मुखं, मिथुनं बाहू, कर्कटो हृदयं, सिंह उदरं, कन्या कटिः, तुला वस्तिर्नाभेरधोभागः, वृश्चिको गुह्यं, धनुरुरुयुग्मं, मकरो जानुयुगलं, कुम्भो जङ्घे मीनश्चरणो। प्रयोजनम्—जन्मकाले पुरुषादिराशिषु शुभग्रहाक्रान्तेषु मनुष्याणां शीर्षादिकानामारोग्यता पापाक्रान्तेषु रोगित्वं सङ्ग्रामादिप्रविष्टस्य ब्रणादिज्ञानम्।।४-५।।

मेषादि १२ राशियाँ क्रम से कालपुरुष के मस्तकादि अङ्ग हैं । यथा–मेष-मस्तक, वृष-मुख, मिथुन-भुज, कर्क-हृदय, सिंह-पेट, कन्या-कटि, तुला-बस्ति (नाभि और लिंग के मध्य अंग), वृश्चिक-लिंग, धनु-जंघा, मकर-घुटना,

कुम्भ-घुटना का निचला भाग और मीन-पैर हैं । इस प्रकार जातक के भी अंग विभाग की कल्पना करनी चाहिये । जिस राशि में शुभग्रह हो उस राशि सम्बन्धी अंग को पुष्ट (सबल) और जिसमें पापग्रह हो उसको विकारयुक्त (निर्बल) समझना चाहिये ।। ४-५ ।।

राशियों के वर्ण—

अरुणसितहरितपाटलपाण्डुविचित्रा सितेतरपिशङ्गौ ।
पिङ्गलकर्बुरबभ्रुकमलिना रुचयो यथासङ्ख्यम् ।। ६ ।।

अरुणसितेति। व्याधितस्य पीडाज्ञानाय तिलकादिचिह्नज्ञानाय च राशिवर्णज्ञानमाह—अजाद्या इत्यनुवर्तते। अजादयो राशयो वर्णयुता भवन्ति। तत्र मेषोऽरुण ईषद्रक्तः, वृषः श्वेतः, मिथुनं हरितः शुकाभः, कर्कटः पाटलः ईषच्छ्वेतरक्तः, सिंहः पाण्डुधूम्राभः ईषच्छुवलः, कन्याराशिर्विचित्रो नानावर्णः, तुला सितेतरः कृष्णः, वृश्चिकः पिशङ्गः सुवर्णवर्णः, धन्वी पिङ्गल ईषत्कपिलः, मकरः कर्बुरः शुक्लकपिलो मिश्रवर्णः, कुम्भो बभ्रुः कपिलः, मीनो मलिनो मत्स्यवर्णः। एता राशीनां रुचयो वर्णाः। प्रयोजनं हृतनष्टादिषु द्रव्यवर्णज्ञानम्।।६।।

मेष का लाल, वृष-श्वेत, मिथुन-हरा, कर्क-पाटल, (श्वेत-रक्त मिश्रित), सिंह-पाण्डु (श्वेत-पीत मिश्रित), कन्या-चित्र-विचित्र (अनेक वर्ण), तुला-काला, वृश्चिक-सुवर्ण के समान, धनु-पिंगल (लाल-पीला मिश्रित), मकर-कबरा, कुम्भ-बभ्रुक (नकुल के समान) तथा मीन का वर्ण मलिन है ।। ६ ।।

विशेष–प्रयोजन यह है कि प्रश्नादिकाल में जो तात्कालिक राशि का वर्ण है, वही प्रश्नकर्ता के मनोगत पदार्थों का वर्ण जाने ।

राशियों की पु० स्त्री० संज्ञा, दिशाज्ञान—

पुंस्त्री-क्रूराऽक्रूरौ चर-स्थिर-द्विस्वभावसंज्ञाश्च ।
अजवृषमिथुनकुलीराः पञ्चमनवमैः सहैन्द्र्याद्याः ।। ७ ।।

पुंस्त्रीति। राशिसंज्ञादिदिग्विभागं चाह—पुंस्त्रीति मेषः पुमान्, वृषः स्त्री, मिथुनं पुमान्, कर्कटः स्त्री एवं सर्वत्र। तथा क्रूराऽक्रूरौ मेषः क्रूरः,

वृषोऽक्रूरः सौम्य एवं सर्वत्र। चरस्थिरद्विस्वभावसंज्ञाश्चेति। ततो मेषश्चरः, वृषः स्थिरः, मिथुनं द्विस्वभावः एवं सर्वत्र कर्कटादिषु। प्रयोजनं पुरुष-शीलज्ञानादि। अजवृषमिथुनकुलीरा इति। अजो मेषस्तस्य पञ्चमनवमाभ्यां सह पूर्वदिग्वृषस्य स्वपञ्चमनवमाभ्यां सह दक्षिणा दिक्। मिथुनस्य स्वपञ्चमनवमाभ्यां सह पश्चिमादिक्। कुलीरः कर्कटस्तस्य पञ्चमनवमाभ्यां सहोत्तरादिक्। प्रयोजनं तु चोरादेर्दिग्गमनादिज्ञानम् ।।७।।

मेष आदि १२ राशि क्रम से पुरुष, स्त्री । क्रूर, सौम्य। चर, स्थिर, द्विस्वभाव हैं । तथा मेष, वृष, मिथुन, कर्क ये अपने-अपने पञ्चम, नवम राशि, सहित क्रम से पूर्व आदि दिशाओं के स्वामी हैं ।। ७ ।।

विशेष–इसका प्रयोजन चन्द्र और लग्न की एंव हृतनष्टादि वस्तुओं की दिशा जानने में होता है ।

राशियों के स्वामि-वर्णादि विशेष संज्ञा चक्र—

राशि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
स्वामि	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.
पु. स्त्री	पु.	स्त्री.	पु.	स्त्री.	पु.	स्त्री.	पु.	स्त्री	पु.	स्त्री.	पु.	स्त्री.
क्रूर-सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य
चरादि	चर	स्थिर	द्विस्व.	चर	स्थिर	द्विस्व.	चर	स्थिर	द्विस्व.	चर	स्थिर	द्विस्व.
वर्ण	ला ल	श्वेत	हरा	पाटल	पाण्डु	विचित्र	काला	स्वर्ण	पिंगल	कबरा	बभ्रु	मलिन
दिशादि	पूर्व	दक्षि.	पश्चि.	उत्तर	पूर्व	दक्षि.	पश्चि.	उत्तर	पूर्व	दक्षि.	पश्चि.	उत्तर

मेषादि राशियों एवं नवांशो के स्वामी—

कुजशुक्रज्ञेन्द्वर्कज्ञशुक्रकुजजीवसौरियमगुरवः ।
भेषा नवांशकानामजमकरतुलाकुलीराद्याः ।। ८ ।।

कुजशुक्रेति। राश्यंशाऽधिपानाह—कुजादयो मेषादीनामधिपाः। तत्र मेषस्य भौमोऽधिपतिः, वृषस्य शुक्रः, मिथुनस्य बुधः, कर्कस्य चन्द्रः, सिंहस्यादित्यः, कन्यायाः बुधः, तुलायाः शुक्रः, वृश्चिकस्य भौमः, धन्विनो जीवः, मकरस्य मन्दः, कुम्भस्य शनिः, मीनस्य वृहस्पतिः। तथा नवांशकानामजमकरतुलाकुलीराद्या इति येषां नवांशकानां ते अजमकरकुलीराद्याः। मेषस्य मेषाद्या नवांशा धन्वन्ताः, वृषस्य मकराद्या कन्यान्ताः, मिथुनस्य तुलाद्या मिथुनान्ताः, कर्कटस्य कर्कराद्या मीनान्ताः, मेषवत् सिंहधन्विनोः, वृषवत् कन्यामकरयोः, मिथुनवत्तुलाकुम्भयोः कर्कटवद्वृश्चिकमीनयोर्नवांशकानां राश्यधिपा एवं अधिपतयो ज्ञेयाः ।।८।।

मङ्गल, शुक्र, बुध, चन्द्रमा, सुर्य, बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति, शनि, शनि, बृहस्पति ये क्रम से मेषादि १२ राशियों के स्वामी हैं । तथा मेषादि राशियों के नवांशादिकों के भी क्रम से मङ्गलादिक ही स्वामी होतें हैं । एवं मेषादि १२ राशियों से क्रम से मेषादि, मकरादि, तुलादि और कर्कादि तीन आवृत्ति करके नवांश होते हैं । जैसे मेष में मेषादि ९, वृष में मकरादि ९, मिथुन में तुलादि ९ तथा कर्क में कर्कादि ९ राशि। स्पष्टार्थ चक्र देखें—

विशेष–इसका प्रयोजन जन्मकाल में राशि और नवांश में जो बली रहता है । उसी के समान जातक का रूप-वर्ण आदि समझा जाता है । ।। ८ ।।

नवांश-बोधक चक्र—

भाग	अं.क.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
१	३।२०	मे.	मं.	तु.	क.	मे.	मं.	तु.	क.	मे.	मं.	तु.	क.
२	६।४०	वृ.	कुं.	वृ.	सिं.	वृ.	कुं.	वृ.	सिं.	वृ.	कुं.	वृ.	सिं.
३	१०।००	मि.	मी.	ध.	क.	मि.	मी.	ध.	क.	मि.	मी.	ध.	क.
४	१३।५०	क.	मे.	म.	तु.	क.	मे.	म.	तु.	क.	मे.	म.	तु.
५	१६।४०	सिं.	वृ.	कु.	वृ.	सिं.	वृ.	कु.	वृ.	सिं.	वृ.	कु.	वृ.
६	२०।००	क.	मि.	मी.	ध.	क.	मि.	मी.	ध.	क.	मि.	मी.	ध.
७	२३।२०	तु.	क.	मे.	मं.	तु.	क.	मे.	मं.	तु.	क.	मे.	मं.
८	२६।४०	वृ.	सिं.	वृ.	कुं.	वृ.	सिं.	वृ.	कुं.	वृ.	सिं.	वृ.	कुं.
९	३०।००	ध.	क.	मि.	मी.	ध.	क.	मि.	मी.	ध.	क.	मि.	मी.

होरा-द्रेष्काण-द्वादशांश के स्वामी—

स्वगृहाद् द्वादशभागाः द्रेष्काणाः प्रथमपञ्चनवपानाम् ।
होरे विषमेऽर्केन्द्वोः समराशौ चन्द्रतीक्ष्णांशोः ।। ९ ।।

स्वगृहादिति। द्वादशभागद्रेष्काणहोराधिपतिज्ञानमाह—स्वगृहात् आरभ्य द्वादशभागाः २।३० गणनीयाः। मेषस्य मेषाद्या मीनान्ताः, वृषस्य वृषभाद्या मेषान्ताः, एवं सर्वत्र। द्वादशांशकानां राश्यधिपा एवाऽधिपतयः। द्रेष्काणाः प्रथमपञ्चनवपानामिति। द्रेष्काणो राशित्रिभागः। एवं यथाक्रमं प्रथमपञ्चनवपानां सम्बन्धिनो भवन्ति। तथा मेषस्य प्रथमोऽङ्गारकः तस्य सम्बन्धी, द्वितीयः पञ्चमस्याधिपस्यार्कस्य सम्बन्धी, तृतीयो नवमाधिपस्य जीवस्य सम्बन्धी, एवं वृषादीनामपि। होरे विषमे इति। होरा राश्यर्ध १५ तत्र विषमराशीनां मेषमिथुनसिंहादीनां प्रथमहोरादित्यस्य द्वितीयहोरा चन्द्रमसः। समराशीनां वृषकर्कटकन्यादीनां प्रथमा चन्द्रमसः, द्वितीयार्कस्य ।।९।।

मेषादि राशियों में तद्-तद् राशि से ही आरम्भकर १२, १२ राशियों के द्वादशांश होते हैं । अर्थात् मेष में प्रथम द्वादशांश (२।३० अंश तक) मेष का आगे ५।०० अंश तक वृष का इत्यादि । तथा प्रत्येक राशि में ३ द्रेष्काण (तृतीयांश) होते हैं । उनमें प्रथम उसी राशि का, द्वितीय द्रेष्काण उस राशि से ५ वाँ का, तृतीय द्रेष्काण अपने से नवमी राशि के स्वामी का होता है । एवं विषम (मेष, मिथुन आदि) राशियों में प्रथम होरा सूर्य की, द्वितीय चन्द्रमा की और सम (वृष,कर्क आदि) राशियों में प्रथम चन्द्रमा की, द्वितीय सूर्य की होरा होती है।।९।।

होरा शब्द से यहाँ राशि का आधा (१५ अंश) समझना ।

विशेष–गर्माधान से जन्मकाल ज्ञान के लिए चन्द्रमा के ''द्वादशांश'' का प्रयोजन पड़ता है । चोर आदि (स्त्री, पु०) के स्वरूप ज्ञान में ''द्रेष्काण'' का, तथा जातक मृदुल स्वभाव वाला है अथवा तेजस्वी है । इसका ज्ञान ''होरा'' द्वारा ज्ञात किया जाता है ।

द्रेष्काण बोधक चक्र—

अ.क.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
१-१०	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.
११-२०	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.
	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	चं.
२१-३०	ध.	म.	कु.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	बृ.
	बृ.	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.

द्वादशांशचक्रम्—

अंश	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
२।३०	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
५।०	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	मे.
७।३०	मे.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	मे.	वृ.
१०।०	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	मे.	वृ.	मि.
१२।३०	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.
१५।०	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.
१७।३०	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.
२०।०	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.
२२।३०	ध.	म.	कु.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.
२५।०	म.	कु.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.
२७।३०	कु.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.
३०।०	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.

होराचक्रम्—

लग्नं	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
१५अं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.
३०अं.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.

त्रिंशाश के स्वामी —

कुजयमजीवज्ञसिताः पञ्चेन्द्रियवसुमुनीन्द्रियांशानाम् ।
विषमेषु समर्क्षेषूत्क्रमेण त्रिंशांशपाः कल्प्याः ।। १० ।।

कुजयमेति। त्रिशांशाधिपानाह—विषमराशिषु यथाक्रमेण कुजादीनां पञ्चादयोः भागाः त्रिशांशकाः कल्प्याः। तत्रादावेवाङ्गारकस्य पञ्च, ततः परं

मन्दस्य पञ्च, ततो जीवस्याष्टौ, ततः परं बुधस्य सप्त, ततः शुक्रस्य पञ्च। एवं समराशिषूत्क्रमेण। यथा—प्रथमाः पञ्च शुक्रस्य, ततः सप्त बुधस्य, ततोऽष्टौ जीवस्य, ततः पञ्च सौरस्य, ततः पञ्च भौमस्य अवगन्तव्यः।।१०।।

विषम राशियों में आदि से ५ अंश मंगल के, उसके बाद ५ अंश शनि के, ८ अंश बृहस्पति के, ७ अंश बुध के तथा अन्त में ५ अंश शुक्र के त्रिशांश होते हैं । तथा सम राशियों में इससे विपरीत (अर्थात् शुक्र के ५, बुध के ७, बृहस्पति के ८, शनि के ५, मंगल के ८ अंश) त्रिंशांश होते हैं ।। १० ।।

विशेष–त्रिंशांश का प्रयोजन सूर्याश्रित त्रिंशांश से जातक के सत्त्वादि गुण जानने में होता है ।

त्रिशांश बोधक चक्र—

	मं.	श.	बृ.	बु.	शु.	
त्रिशांशपाः	५	५	८	७	५	विषमराशि
	शु.	बु.	बृ.	श.	मं.	
त्रिशांशपाः	५	७	८	५	५	समराशि

राशियों के दिग्बल और कालबल

नृचतुष्पदकीटाप्याबलिनः प्राग्दक्षिणापरोत्तरगाः ।
सन्ध्याद्युरात्रिबलिनः कीटा नृचतुष्पदाश्चैवम् ।। ११ ।।

नृचतुष्पदेति। राशीनां दिवकालबलमाह—नृराशयो मिथुनकन्यातुला-कुम्भधन्विपूर्वार्द्धमेते पूर्वस्था बलिनः। लग्नगता इत्यर्थः।

पूर्वदिशा (लग्न) में द्विपदराशि, दक्षिणदिशा (दशमलग्न) में चतुष्पद राशि, पश्चिमदिशा (सप्तमलग्न) में कीटराशि एवं उत्तरदिशा (चतुर्थलग्न) में जलचरराशि बली होती है । दोनों सन्ध्या में कीटराशि, दिन में द्विपदराशि और रात्रि में चतुष्पदराशि बली होती है ।। ११ ।।

विशेष–सायं सन्ध्या में कर्क और वृश्चिक राशि तथा प्रातः सन्ध्या में मीन और मकर का उत्तरार्ध बली होता है ।

राशियों की द्विपद आदि संज्ञा–

मेषवृषधन्विसिंहाश्चतुष्पदा मकरपूर्वभागश्च ।
कीटः कर्कटराशिः सरीसृपो वृश्चिकः कथितः ।। १२ ।।
मकरस्य पश्चिमार्धं ज्ञेयो मीनश्च जलचरः ख्यातः ।
मिथुनतुलाघटकन्या द्विपदाख्या धन्विपूर्वभागश्च ।। १३ ।।

मेषवृषेति। चतुष्पदा मेषवृषसिंहधन्विराद्धा मकरपूर्वाद्धे एते दक्षिणस्था बलिनो दशमस्थानगता इत्यर्थः। कीटो वृश्चिकः स पश्चिमस्थो बली सप्तमस्थ इत्यर्थः। कर्कटमकरपरार्धमीना आप्याः एते चोत्तरस्था बलिनश्चतुर्थस्थानगता इत्यर्थः। सन्ध्याद्युरात्रिबलिन इति। अत्र जलराशयोऽपि कीटग्रहणेन गृह्यन्ते। एवं कीटः सन्ध्याकाले बली, नरराशयो दिवाकाले बलिनश्चतुष्पदा रात्रौ बलिनः।।१२-१३।।

चतुष्पदराशि मेष, वृष, सिंह, धनु का उत्तरार्ध और मकर के पूर्वार्ध को कहते हैं । कीट या सरीसृपराशि कर्क और वृश्चिक को, जलचरराशि मकर के उत्तरार्ध और मीन को तथा द्विपदराशि मिथुन, तुला, कुंभ, कन्या और धनु के पूर्वार्ध को कहते हैं ।। १२-१३ ।।

राशिबल—

अधिपयुतो दृष्टो वा बुधजीवयुतेक्षितश्च यो राशिः ।
स भवति बलवान्न यदा युक्तो दृष्टोऽपि वा शेषैः ।। १४ ।।

अधिपयुत इति। अथ राशिबलज्ञानार्थमाह—अधिपयुतः स्व-स्वामिना युतो दृष्टो वा राशिर्बलवानेव। बुधजीवयोरन्यतमेन युक्तो दृष्टो वा बलवानेव। यदाऽन्यैर्ग्रहैरयुतो नाऽपि वीक्षितः। अनुक्तदृष्टो युतो वा स्वस्वामिना युक्तो राशिर्बलवान् भवति। स्वामिना दृष्ट; अन्यैः उक्तानुक्तैर्दृष्टो राशिर्मध्यबलो भवति। स्वस्वामिना बुधजीववर्ज्यमन्यैर्युतदृष्टो बलहीन एव ।।१४।।

जो राशि अपने स्वामी से युत वा दृष्ट हो अथवा बुध और बृहस्पति से युत-दृष्ट हो तथा अन्य (शेष) ग्रह से युक्त वा दृष्ट न हो तो वह राशि बली होती है।। १४ ।।

विशेष–जो राशि अपने स्वामी + बुध + गुरु तीनों से ही युत-दृष्ट हो और शेष ग्रहों से युत-दृष्ट न हो तो पूर्ण-बली, अन्य ग्रहों से भी युत-दृष्ट होने से मध्यबली और यदि अपने स्वामी अथवा बुध-गुरु किसी से भी युत-दृष्ट न हो तो बलहीन समझना चाहिये ।

लग्नादिभाव संज्ञा—

तनुधनसहजसुहृत्सुतरिपुजायामृत्युधर्मकर्माख्याः।
व्यय इति लग्नाद्भावाश्चतुरस्राख्येऽष्टमचतुर्थे ।। १५।।

तनुधनसहजेति। लग्नादीनां तन्वादिभावाश्रयत्वव्यवहारार्थमाह—लग्नादारभ्यामी तन्वादयो भावाः। तत्र लग्नं प्रथमं पुरुषस्य शरीरं, द्वितीयं धनस्थानं, तृतीयं सहजं, चतुर्थ सुहृत् मातृमित्रसंज्ञं वा, पञ्चमं सुतः, षष्ठं शत्रुः, सप्तमं जाया भार्या वा, अष्टमं मृत्युः, नवमं धर्मः, दशमं कर्म, एकादशं आयः, द्वादशं व्ययः। प्रयोजनं लग्नादीनां यथोक्तभावानां शुभपापग्रहसंयोगात्सम्पत्ति-विपत्ती चिन्तनीये इति। चतुरस्राख्येऽष्टमचतुर्थे लग्नादष्टमस्थानस्य चतुर्थस्थानस्य चतुरस्र इत्याख्या ।।१५।।

तनु, धन, सहज, सुहृत्, सुत, रिपु, जाया, मृत्यु, धर्म, कर्म, व्यय ये क्रम से लग्नादि द्वादशभावों के नाम हैं । तथा लग्न से ४।८ भावों की चतुरस्र संज्ञा है ।। १५ ।।

पातालहिबुकवेश्मसुखबन्धुसंज्ञाश्चतुर्थभावस्य ।
नव-पञ्चमे त्रिकोणे नवमर्क्ष त्रित्रिकोणं च ।। १६।।

पातालेति। चतुर्थनवमपञ्चमानां संज्ञान्तरमाह—लग्नाच्चतुर्थभवनस्य पातालसंज्ञा सुखसंज्ञा वेश्मसंज्ञा हिबुकसंज्ञा बन्धुसंज्ञा च। तथा च नवमस्य पञ्चमस्य च त्रिकोण इत्याख्या। नवमस्य त्रित्रिकोणमित्यपि च ।।१६।।

चतुर्थभाव की पाताल, हिबुक, वेश्म (गृह), सुख, बन्धु संज्ञा है और नवम तथा पञ्चम की त्रिकोण एवं केवल नवमभाव की त्रि-त्रिकोण संज्ञा है।।१६।।

धी: पञ्चमं तृतीयं दुश्चिक्यं सप्तमं तु यामित्रम् ।
द्यूनं द्युनं च तद्वच्छिद्रमष्टमं द्वादशं रिष्फम् ।। १७।।

धी: पञ्चममिति। पञ्चमतृतीयसप्तमाष्टमद्वादशस्थानानां संज्ञान्तरमाह– लग्नात्पञ्चमस्थानं धीसंज्ञं, तृतीयं दुश्चिक्यसंज्ञं, सप्तमं यामित्रसंज्ञं, द्यूनं द्युनं च तत्तदेव सप्तमस्थानं सप्तमं यामित्रसंज्ञं द्यूनसंज्ञं द्युनसंज्ञं च, अष्टमस्थानं छिद्रसंज्ञं छिद्रं क्षतपर्यायं लग्नाद् द्वादशं रिष्फसंज्ञम् ।।१७।।

पञ्चमभाव धी (बुद्धि), तृतीय की दुश्चिक्य, सप्तम की जामित्र, द्यून द्युन एवं अष्टमभाव की छिद्र तथा द्वादशभाव की रिष्फ संज्ञा है । १७ ।।

केन्द्रादि संज्ञा—

केन्द्रचतुष्टयकण्टकलग्नाऽस्तदशमचतुर्थानाम् ।
संज्ञा परत: पणफरमापोक्लीमं च तत्परत: ।। १८।।

केन्द्रचतुष्टयेति। स्थानानां संज्ञान्तरमाह—लग्नचतुर्थसप्तमदशमानां चतुर्णां स्थानानां प्रत्येकस्य संज्ञात्रयं केन्द्रं चतुष्टयं कण्टकमिति। तत्सर्वस्मा- त्केन्द्रात्परस्य पणफरमित्याख्या। सर्वस्मात्पणफरात्परस्यापोवलीमेत्याख्या ।।१८।।

लग्न, ४, ७, १०, इन भावों को कण्टक, केन्द्र और चतुष्टय संज्ञा है। केन्द्र के आगे के (२, ५, ८, ११ इन चार) स्थानों का नाम पणफर तथा इनके आगे के (३, ६, ९, १२ ये) आपोक्लीम संज्ञा हैं ।। १८ ।।

उपचय तथा वर्गोत्तमनवांश—

त्रिषडेकादशदशमान्युपचयभवनान्यतोऽन्यथाऽन्यानि ।
वर्गोत्तमा नवांशाश्चरादिषु प्रथममध्यान्त्या: ।। १९।।

त्रिषडेकादशेति। उपचयापचयसंज्ञां नवांशकानां वर्गोत्तमसंज्ञां चाह— तृतीयषष्ठैकादशदशमानामुपचयमित्याख्या। अतोऽन्यथाऽन्नानि उपचयेभ्यो यान्यवशेषस्थानानि तान्यपचयानि इत्यर्थ:। वर्गोत्तमा नवांशाश्चरराशिषु प्रथम नवांशस्य वर्गोत्तम: स्थिरराशिषु मध्यमस्य पञ्चमस्य द्वि:स्वभावराशेश्चान्त्यस्य

नवांशस्य। एतदुक्तं भवति। सर्वस्यैव राशेः स्वनवांशको वर्गोत्तमाख्य इति।।१९।।

लग्न से ३, ६, १०, ११ इन चार स्थानों की उपचयसंज्ञा है । और इनके अलावा शेष स्थान (१, २, ४, ५, ७, ८, ९, १२ ये) अनुपचयसंज्ञक हैं । एवं चर, स्थिर, द्विस्वभाव में क्रम से प्रथम (१ पहिला), मध्यम (५ वाँ) तथा अन्तिम (९ वाँ) नवांश वर्गोत्तम कहलाता है ।। १९ ।।

विशेष–किसी भी राशि का अपना ही नवांश वर्गोत्तम कहलाता है । जैसे-मेषादि चरराशियों में प्रथम, वृषादि स्थिरराशियों में पंचम तथा मिथुन आदि द्विस्वभावराशियों में नवम नवांश अपना ही होता है । अतः वर्गो में उत्तम (स्वकीय) होने से यह शुभफलदायक कहा गया है ।

राशियों के दिन-रात्रिबल और शीर्षोदय-पृष्ठोदयत्व—

मेषाद्याश्चत्वारः सधन्विमकराः क्षपाबला ज्ञेयाः ।
पृष्ठोदया विमिथुनाः शिरसान्ये ह्युभयतो मीनः ।।२०।।

मेषाद्याश्चत्वार इति। राशीनां दिनरात्रिबलपृष्ठोदयत्वशीर्षोदयत्वमाह-मेषाद्याश्चत्वारो मेषवृषमिथुनकर्कटा धन्विमकराभ्यां सह एते षड्राशयो रात्रिबलिनः। अन्ये दिनबलाः। अत्र यद्यपि बलग्रहणमस्ति तथापि संज्ञामात्रं वेदितव्यं यथा रात्रिसंज्ञा तथा दिनसंज्ञा इति। यतस्ते द्युबलं सन्ध्याद्युरात्रिबलिन इति। पृष्ठोदया विमिथुना इति। मेषवृषकर्कटधन्विमकराः पृष्ठोदयसंज्ञाः। अन्ये मिथुन-सिंहकन्यातुलावृश्चिककुम्भाः शीर्षोदयसंज्ञाः। मीनः शीर्षोदयः पृष्ठोदय-श्चेति ।।२०।।

मेष, वृष, मिथुन, कर्क, धनु और मकर ये ६ रात्रिबली और शेष राशियाँ दिनबली हैं । मेष, वृष, कर्क, धनु, मकर ये पृष्ठोदय तथा मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक और कुम्भ ये शीर्षोदयसंज्ञक परञ्च मीन उभयोदय (शीर्ष-पृष्ठोदय) हैं ।। २० ।।

विशेष–जातक के जन्मसमय में प्रथम अङ्गोदय जानने में इसका प्रयोजन होता है ।

ग्रहों के उच्च स्थान

अजवृषमृगाङ्गनाकर्किमीनवणिजांशकेष्विनाद्युच्चाः ।
दशशिख्यष्टाविंशतितिथीन्द्रियत्रिनवविंशेषु ।।२१।।

अजवृषेति। अर्कादीनामुच्चराशीनाह। सारावल्याम्—
विंशतिरंशाः सिंहे त्रिकोणमपरे स्वभवनमर्कस्य।
उच्चं भागत्रितयं वृष इन्दोः स्यात् त्रिकोणमपरे स्युः ।
द्वादशभागा मेषे त्रिकोणमपरे स्वभं तु भौमस्य ।
उच्चफलं कन्यायां बुधस्य तुङ्गाशकैः सदा चिन्त्यम् ।।
परतस्त्रिकोणजातं पञ्चभिरंशैः स्वराशिजं परतः ।
दशभिर्भागैश्चापे त्रिकोणेमपरे स्वभं तु देवगुरोः ।।
शुक्रस्यांशातिथयस्त्रिकोणमपरे स्वभं तुलायां च ।
कुम्भे त्रिकोणनिजभे रविजस्य रवेर्यथा सिंहे ।।

तद्यथा— आदित्यस्य मेष उच्चं, चन्द्रस्य वृष उच्चं, भौमस्य मृगो मकरः, बुधस्य कन्या, गुरोः कर्कः, शुक्रस्य मीनः, मन्दस्य वणिक् तुला एवं सर्वराशिषूच्चसंज्ञा दशादिषु भागेषु व्यवस्थिताः परमोच्चस्था भवन्ति। तद्यथा–मेषस्य दशमांशे व्यवस्थितोऽर्कः परमोच्चस्थो भवति, वृषस्य तृतीयभागे चन्द्रः मकरस्याष्टा- विंशतिभागे भौमः कन्यायाः पञ्चदशे बुधः कर्कटस्य पञ्चमे जीवः मीनस्य सप्तविंशे शुक्रस्तुलायां विंशतितमे सौरि एवं विधाः परमोच्चस्था उदिताः ग्रन्थान्तरे च।

रवेर्मेषतुले प्रोक्ते चन्द्रस्य वृषवृश्चिकौ।
भौमस्य मृगकर्कौ च कन्यामीनौ बुधस्य च।।
जीवस्य कर्कमकरौ मीनकन्ये सितस्य च।
तुलामेषौ च मन्दस्य उच्चनीचे उदाहृते ।।

मेषराशि १० अंश से सूर्य का, वृषराशि ३ अंश से चन्द्रमा का, मकरराशि २८ अंश मंगल का, कन्याराशि १५ अंश से बुध का, कर्कराशि ५

अंश से गुरु का, मीनराशि २७ अंश से शुक्र का एवं तुलाराशि २० अंश से शनि का उच्च का उच्च होता है ।। २१ ।।

ग्रहों के नीच और त्रिकोणस्थान

उच्चान्नीचं सप्तममर्कादीनां त्रिकोणसंज्ञानि ।
सिंहवृषाजप्रमदा-कार्मुकभृतौलिकुम्भधराः ।।२२।।

उच्चान्नीचमिति। ग्रहाणामुच्चनीचस्थानानि त्रिकोणानि चाह—यस्य ग्रहस्य यदुच्चं तस्मादुच्चस्थानात् सप्तमं नीचसंज्ञं तत्र दशादिष्वंशेषु परमनीचत्वं ज्ञेयम्। अत्र न्यासः एवं विधाः सूर्यादयः परमनीचस्था भवन्ति। अर्कादीनां त्रिकोणसंज्ञानीति। आदित्यस्य सिंहस्त्रिकोणाख्यः चन्द्रमसो वृष भौमस्य मेषः बुधस्य कन्या, जीवस्य धनुः, शुक्रस्य तुला, मन्दस्य कुम्भ इत्यर्थः ।।२१-२।।

जिस ग्रह का जितने अंश से जो उच्च राशि है, उससे सप्तम राशि उतने ही अंश से उस ग्रह का नीच होता है । सूर्य का सिंह राशि, चन्द्र का वृष, भौम का मकर, बुध का कन्या, गुरु का धनु, शुक्र का तुला और शनि का कुंभ राशि त्रिकोण (मूलत्रिकोण) स्थान है ।। २२ ।।

ग्रहों की षड्वर्ग संज्ञा—

गृहहोराद्रेष्काणा नवभागो द्वादशांशकस्त्रिंशः ।
वर्गः प्रत्येतव्यो ग्रहस्य यो यस्य निर्दिष्टः ।।२३।।

गृहहोरेति। षड्वर्गज्ञानार्थमाह—आत्मीयो राशिर्ग्रहस्य गृहसंज्ञ। आत्मीया होरा आत्मीयश्च द्रेष्काण आत्मीयो नवमभाग आत्मीयो द्वादशांश आत्मीयस्त्रिंशद्भागः, एतेषां षड्वर्गसंज्ञा यद्यप्येवं तथाप्यात्मीयेषु स्थितः स्ववर्गस्थो भवति। वर्गशब्दस्य समुदायवाचित्वात् यत्र चन्द्रार्कयोः त्रिशांशका-भावो भौमादीनां होराभाव एवं षष्ठानामसम्भवः। स्वगृहाधिष्ठितो वर्गस्थः। परवर्गस्थस्याप्येवमेवेति ज्ञातव्यम् ।।२३।।

जिस ग्रह के जो गृह-होरा द्रेष्काण-नवांश-द्वादशांश त्रिंशांश बताये गये हैं, वे उस ग्रह के वर्ग कहलाते हैं ।। २३ ।।

विशेष–पूर्व जो गृहादि पृथक्-पृथक् षड्वर्ग कहे गये हैं उनमें किसी के भी आत्मीय ६ वर्ग नहीं हो सकते, क्योंकि सूर्य और चन्द्रमा के त्रिंशांश नहीं होते। एवं मंगलादि ग्रहों की होरा नहीं होती है, अत: इनमें आत्मीय वर्ग ५ ही सिद्ध होते हैं । इसलिये इनमें ३ भी आत्मीय वर्ग प्राप्त हो जाय तो श्रेष्ठ समझा जाता है ।

इति लघुजातके राशिप्रभेदाध्याय: ।। १ ।।

अथ ग्रहबलाध्यायः ।। २ ।।

कालपुरुष के आत्मादि विभाग—

आत्मा रविः शीतकरस्तु चेतः सत्त्वं धराजः शशिजोऽथ वाणी ।
ज्ञानं सुखं चेन्द्रगुरुर्मदश्च शुक्रः शनिः कालनरस्य दुःखम् ।।१।।

कालरूप पुरुष की आत्मा सूर्य, चित्त चन्द्रमा, बल भौम, वाणी बुध, ज्ञान और सुख बृहस्पति, मदन (कामदेव) शुक्र और दुःख शनि है ।। १ ।।

आत्मादि का शुभाशुभत्व—

आत्मादयो गगनगैर्बलिभिर्बलवत्तराः ।
दुर्बलैर्दुर्बला ज्ञेया विपरीतः शनिः स्मृतः ।। २।।

जन्म के समय में सूर्यादि ग्रह बली हों तो आत्मादि भी बलवान् होते हैं । यदि सूर्यादि ग्रह दुर्बल हों तो आत्मादि को भी दुर्बल समझना चाहिए । शनि को विपरीत अर्थात् शनि जितना बलवान् होता है, उतना ही अशुभ एवं जितना निर्बल होता है, उतना ही शुभ समझना चाहिए ।। २ ।।

ग्रहों के राजत्वादि अधिकार

राजा रविः शशधरश्च बुधः कुमारः
सेनापतिः क्षितिसुतः सचिवौ सितेज्यौ ।
भृत्यस्तथा तरणिजः सबला ग्रहाश्च
कुर्वन्ति जन्मसमये निजमेव रूपम् ।।३।।

सूर्य एवं चन्द्रमा राजा, बुध राजकुमार, भौम सेनापति, गुरु एवं शुक्र मंत्री और शनि नौकर (भृत्य) ग्रह हैं । जन्म-समय में जो ग्रह बली (बलवान्) होता है वह अपने अनुसार ही जातक को बनाता है ।। ३।।

विशेष–जिस जातक की कुण्डली में सूर्य और चन्द्रमा बली हो तो वह राजा या राजा के समान होता है । इसी प्रकार अन्य ग्रहों से भी फल समझना चाहिए ।

दिशाओं के स्वामी तथा शुभाशुभ ग्रह

प्राच्यादीशा रविसितकुजराहुतमेन्दुसौम्यवाक्पतयः ।
क्षीणेन्द्वर्कयमाराः पापास्तैः संयुतः सौम्यः ।।४।।

प्राच्यादीशेति। अथातो ग्रहयोनिप्रभेदाध्यायं व्याख्यास्यामः। तत्रादौ ग्रहाणां दिक्स्वाम्यं सौम्यपापत्वं चाह—तत्र पूर्वस्यां दिश्यर्कोऽधिपतिः, पूर्वदक्षिणस्यां शुक्रः, दक्षिणायां भौमः, दक्षिणपश्चिमायां राहुः, पश्चिमायां सौरिः, पश्चिमोत्तरायां चन्द्रः, उत्तरस्यां बुधः, उत्तरपूर्वस्यां जीवः। तद्यथा–पूर्वे रविः, आग्नेय्यां शुक्रः, दक्षिणे कुजः, नैर्ॠत्यां राहुः, पश्चिमे शनिः, वायव्यां चन्द्रः, उत्तरस्यां बुधः, ईशान्यां गुरुः। क्षीणेन्द्वर्कयमारा इति। कृष्णपक्षस्याष्टम्यां ऊर्ध्वं शुक्लपक्षस्याष्टमीं यावत्क्षीणचन्द्रो भवति। क्षीणश्चन्द्र आदित्याङ्गारकशनैश्चराः पापसंज्ञकास्तैः संयुतो बुधोऽपि पापो भवति। एषां पापानां मध्येऽन्तमेन युक्तो बुधः पाप एव अर्थादेवाऽक्षीणचन्द्रमाः सौम्यः बुधबृहस्पतिशुक्राश्च सौम्या ज्ञेया इति।।४।।

पूर्वादि आठ दिशाओं के स्वामी क्रमशः सूर्य, शुक्र, मंगल, राहु, शनि, चन्द्र, बुध और गुरु होते हैं । जैसे पूर्व का सूर्य, आग्नेयकोण का शुक्र, दक्षिण का मंगल, नैर्ॠत्यकोण का राहु, पश्चिम का शनि, वायुकोण का चन्द्र, उत्तर का बुध और ईशानकोण का स्वामी गुरु है । क्षीणचन्द्र, सूर्य, शनि और मंगल ये पापग्रह पूर्णचन्द्र, गुरु, शुक्र और बुध ये शुभग्रह होते हैं ।। ४ ।।

विशेष–शुक्लपक्ष की अष्टमी से कृष्णपक्ष की सप्तमी तिथि तक पूर्णचन्द्र, शेष क्षीणचन्द्र समझना चाहिए । राहु और केतु भी पापग्रह हैं ।

ग्रहों की पुं-स्त्री संज्ञा तथा वेदों के अधिप—

क्लीबपती बुधसौरी चन्द्रसितौ योषितां नृणां शेषाः ।
ॠगथर्वसामयजुषामधिपा गुरुसौम्यभौमसिताः ।।५।।

क्लीबपति। ग्रहाणां स्त्रीपुन्नपुंसकाऽधिपत्यं शाखाधिपत्यं चाह—बुधशनैश्चरौ नपुंसकाधिपती, चन्द्रसितौ स्त्रीणामधिपती, शेषा आदित्याङ्गारक-बृहस्पतयस्ते नृणामधिपतयः। प्रयोजनं चोरज्ञानादि। ॠगथर्वेत्यादि। ॠग्वेदा-

धिपतिर्जीव:, अर्थववेदाधिपतिर्बुध:, यजुर्वेदाधिपति: शुक्र:, सामवेदाधिपति-भौम:। प्रयोजनं बलवति शाखाधिपतौ कुले जातस्तद्विद्याश्रेष्ठो ब्राह्मणो भवति। ब्राह्मणे चोरविज्ञानशाखा विज्ञानग्रहपीडायां तच्छाखापठनं पूजनमिति ।।५।।

बुध, शनि नपुंसकों के, चन्द्रमा, शुक्र स्त्रियों के तथा शेष (सूर्य, मंगल, बृहस्पति) ग्रह पुरुषों के स्वामी हैं । एवं बृहस्पति, बुध, मंगल और शुक्र ये क्रम से ऋग्वेद, अथर्ववेद, सामवेद और यजुर्वेद के अधिपति (स्वामी) हैं ।। ५ ।।

विशेष–जन्मसमय में जातक के और प्रश्नसमय में चोर आदि के पुंस्त्रीत्व, पुंग्रहादि से जाना जाता है तथा ग्रहादि जन्य अरिष्ट शान्तिपूजनादि में ग्रहों के वेदाधिपति का प्रयोजन होता है ।

ब्राह्मणादि वर्णों के अधिप—

जीवसितौ विप्राणां क्षत्राणां रविकुजौ विशां चन्द्रः ।
शूद्राधिपः शशिसुतः शनैश्चरः सङ्करभवानाम् ।। ६।।

जीवसिताविति। ग्रहाणां वर्णाधिपत्यमाह–जीवशुक्रौ ब्राह्मणानामधिपती, सूर्याङ्गारकौ क्षत्रियाणामधिपतिश्चन्द्रो वैश्याधिपति: बुध: शूद्राधिपति: शनैश्चर: सङ्करभवानामधिपति: प्रतिलोमजानां सूतमागधादीनामित्यर्थ: ।।६।।

बृहस्पति, शुक्र ब्राह्मणों के स्वामी, सूर्य, मंगल क्षत्रियों के स्वामी, चन्द्रमा वैश्यो का, बुध शूद्रों का एवं शनिग्रह शंकरों (म्लेच्छ, नीच) जातियों का स्वामी है ।। ६ ।।

विशेष–जातक अथवा चौरादिकों के वर्ण ज्ञान में इसका प्रयोजन होता है ।

ग्रहों के स्थान बल—

बलवान् स्वगृहोच्चांशे मित्रर्क्षे विक्षितः शुभैश्चापि ।
चन्द्रसितौ स्त्रिक्षेत्रे पुरुषक्षेत्रोपगाः शेषाः ।। ७।।

बलवानिति। बलाबलकरणमाह—मित्रक्षेत्रस्थो ग्रहो बलवान् भवति, स्वगृहस्थ: स्वोच्चस्थ: स्वनवमांशकस्थश्च उच्चादिसाहचर्यात् त्रिकोणस्थोऽपि

यस्मादुक्तं स्वोच्चसुहृत्स्वत्रिकोणनवांशै: स्थानबलमिति वीक्षित: शुभैश्चापि यतस्तत्रस्थो ग्रह: शुभैदृष्टो बलवान् भवति। चन्द्रसितौ स्त्रीक्षेत्रे वृषादौ समराशौ व्यवस्थितौ बलिनौ भवत:। शेषा आदित्याङ्गारकबुधजीवसौरय: पुरुषक्षेत्रस्था: विषमराशौ मेषादौ व्यवस्थिता: बलवन्तो ज्ञेया इति ।। ७ ।।

अपनी राशि, अपने उच्च, अपने नवांश, अपने मित्र की राशि और शुभग्रह से दृष्ट-ग्रह स्थान बली होते हैं । चन्द्रमा और शुक्र वृषादिक समराशियों में तथा शेष (सूर्य, मंगल, बुध, बृहस्पति, शनि) ग्रह मेषादिक विषमराशियों में स्थित हो तो बली होते हैं ।। ७ ।।

ग्रहों के दिग्बल, चेष्टाबल—

प्राच्यादिषु जीवबुधौ सूर्यारौ भास्करि: शशाङ्कसितौ ।
उदगयने शशिसूर्यौ वक्रेऽन्ये स्निग्धविपुलाश्च ।। ८ ।।

प्राच्यादिष्विति। दिग्बलचेष्टाबलयोर्ज्ञानार्थमाह—पूर्वदिक्स्थौ जीवबुधौ बलिनौ भवत:। लग्नगतावित्यर्थ:। शनैश्चर: पश्चिमस्थो बली लग्नात् सप्तमस्थ इत्यर्थ:। चन्द्रशुक्रावुत्तरस्थौ बलिनौ चतुर्थस्थावित्यर्थ:। एतद्दिग्बलम्। अथ चेष्टाबलम्। उदगयन इत्यादि—मकरादिराशिषट्के वर्तमानोदगयनस्थो भवति कर्कादिराशिषट्के वर्तमानो दक्षिणायनस्थश्च। तत्रोत्तरायणस्थौ अर्कशशिनौ बलिनौ, वक्रेऽन्ये। स्फुटगत्या प्रतीपगतय: वक्रिण उच्यन्ते। भौमादयो वक्रगताश्च बलिनौ भवन्ति। तथा गगने स्निग्धा दृश्यमाना बलिनौ भवन्ति विपुला बृहत्प्रमाणा दृश्या वा ।।८।।

बुध और बृहस्पति पूर्वदिशा (१२, लग्न, २ भावों में), सूर्य और मंगल दक्षिण-दिशा (९, १०, ११ भावों) में, शनि पश्चिम-दिशा (६, ७, ८ भावों) में तथा चन्द्रमा और शुक्र ये उत्तर-दिशा (४, ५, ३ भावों) में बली होते हैं– यह ग्रहों का दिग्बल कहलाता है । चन्द्रमा-सूर्य ये दोनों उत्तरायण (मकरादि ६ राशि में रहने पर) और शेष मंगलादि ५ ग्रह वक्रगति होने पर और जब स्वच्छ रश्मि एवं बृहद्बिम्ब (दृश्य) होते हैं–जब चेष्टाबली समझे जाते हैं ।। ८ ।।

विशेष–दिग्बली ग्रह की दशा में उस दिशा में यात्रा करने से मनोरथ सिद्धि होती है । एवं चेष्टाबलयुत ग्रह की दशा में भी शुभफल समझना चाहिये ।

ग्रहों के कालबल—

अहनि सितार्कसुरेज्या द्युनिशं ज्ञो नक्तमिन्दुकुजसौराः ।
स्वदिनादिष्वशुभशुभा बहुलोत्तरपक्षयोर्बलिनः ।।९।।

अहनि सितेति। कालबलमाह–अहनि दिवसे शुक्रादित्यजीवा बलिनः। ज्ञो बुधः द्युनिशं अहोरात्रं बली। नक्तं रात्रौ चन्द्राङ्गारकशनैश्चरा बलिनः। स्वदिनादिष्विति-स्वदिवसे सर्वे ग्रहा बलिनो भवन्ति। आदिग्रहाणात् स्वाब्दे स्वमासे स्वकाले होरायां च। अशुभशुभा इति। अशुभाः पापाः बहुलपक्षे कृष्णपक्षे बलिनः, शुभाः सौम्याः शुक्लपक्षे बलिनः ।।९।।

शुक्र-सूर्य-बृहस्पति ये दिन में, बुध दिन और रात दोनों में एवं चन्द्रमा-मंगल-शनि ये रात्रि में बली होते हैं । सब ग्रह अपने-अपने दिनादि (दिन-मास-वर्ष) में, पापग्रह कृष्णपक्ष में और शुभग्रह शुक्लपक्ष में बली होते हैं ।। ९ ।।

विशेष–मासपति और वर्षपति की विधि सूर्यसिद्धान्त में कहा है कि–

''मासाब्ददिनसंख्याप्तं द्वित्रिघ्नं रूपसंयुतम् ।
सप्तोघृतावशेषौ तु विज्ञेयौ मासवर्षपौ ।।"

अर्थात् सृष्ट्यादि से अहर्गण बनाकर उसमें मास संख्या (३०) से भाग देकर जो लब्धि हो उसको दूना करके १ जोड़कर ७ के भाग देने से जो शेष बचे वह रव्यादि गणना से जो वार आवे, वही मासपति होता है । एवं उसी अहर्गण में वर्ष संख्या (३६०) से भाग देकर लब्धि को ३ से गुणाकर १ जोड़कर ७ के भाग देने जो शेष बचे वह रव्यादि गणना से जो वार (ग्रह) आवे, वह वर्षपति होता है ।

ग्रहों के नैसर्गिकबल—

मन्दारसौम्यवाक्पतिसितचन्द्रार्का यथोत्तरं बलिनः ।
नैसर्गिकबलमेतत् बलसाम्येऽस्माद् बलाधिकता ।।१०।।

मन्दारसौम्येति। नैसर्गिकबलमाह–सर्वेभ्यो ग्रहेभ्यो मन्दो हीनबलः मन्दादङ्गारको बलवान् अङ्गारकाद्बुधः बुधाज्जीवः जीवाच्छुक्रः शुक्राच्चन्द्रः चन्द्रादादित्यः एतद् ग्रहाणां नैसर्गिकं स्वाभाविकबलम्। बलसाम्येऽस्मादधिकचिन्ता। यत्र पूर्वोक्तं ग्रहयोस्तुल्यबलं भवति तत्र नैसर्गिकबलेन चाधिकबलः स ततो बलवान् भवति ।।१०।।

शनि, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, चन्द्रमा, सूर्य-ये उत्तरोत्तर बली हैं । (अर्थात् शनि से मंगल, मंगल से बुध इत्यादि) कथित षड्बल के योग में यदि दो ग्रहों के बलों में समता हो जाय तो इस नैसर्गिक (स्वभावसिद्ध) बल से जिस ग्रह को अधिक बल प्राप्त हो, वही बलवान् होता है ।। १० ।।

ग्रहों के स्थानबल—

मित्रक्षेत्रे स्वोच्चे स्वहोरायां स्वभवनत्रिकोणे च ।
स्वद्रेष्काणे स्वांशे स्वदिने च बलान्विताः सर्वे ।।११।।

मित्रक्षेत्र इति। स्थानबलज्ञानमाह—मित्रक्षेत्रस्थो ग्रहो बलवान् भवति, स्वोच्चस्थः स्वगृहस्थः स्वत्रिकोणस्थः स्वद्रेष्काणस्थः स्वहोरास्थः स्वांशस्थः स्वदिनस्थः एतेषु स्थानेषु स्थितो ग्रहो बलवान् भवति।।११।।

ग्रह अपने मित्र की राशि में, अपने उच्च में, होरा में, अपनी राशि, अपने मूल-त्रिकोण, अपने द्रेष्काण, अपने नवांश और अपने दिन में बली होते हैं।।११।।

ग्रहों की दृष्टिस्थान—

दशम-तृतीये नव-पञ्चमे चतुर्थाष्टमे कलत्रं च ।
पश्यन्ति पादवृद्ध्या फलानि चैवं प्रयच्छन्ति ।।१२।।

दशमतृतीय इति। दृष्टिज्ञानार्थमाह—यस्मिन् स्थाने ग्रहः स्थितः तस्माद् दशमे तृतीये च पाददृष्ट्या पश्यति, नवमे पञ्चमे चार्धदृष्ट्या पश्यति,

चतुर्थाष्टमे पादहीनं पश्यति, त्रिभिः पादैरित्यर्थः। कलत्रं सप्तमं सम्पूर्णदृष्ट्या पश्यति। एवं सर्वे ग्रहाः पश्यति फलानि चैवं प्रयच्छन्ति। यत्र पादमेकं पश्यति तत्र पादमेकं फलं ददाति। यत्र पादद्वयं पश्यन्ति तत्र पादद्वयफलम्। यत्र पादत्रयं पश्यन्ति तत्र पादत्रयफलम्। यत्र सम्पूर्ण पश्यन्ति तत्र सम्पूर्णफलं प्रयच्छन्ति।।१२।।

ग्रह अपने-अपने स्थान से ३।१० को एक चरण से, ४।९ को २ चरण से, ४।८ को ३ चरण से और ७ (सप्तम) को ४ चरण (पूर्ण) दृष्टि से देखते हैं और फल भी दृष्टि के अनुपात से ही देते हैं ।। १२ ।।

ग्रहों के विशेष दृष्टि-स्थान

पूर्णम्पश्यति रविजस्तृतीयदशमे त्रिकोणेमपि जीवः ।
चतुरस्रं भूमिसुतः सितार्कबुधहिमकराः कलत्रं च ।। १३ ।।

शनि तृतीय और दशमस्थान को, बृहस्पति पंचम और नवम स्थान को, मंगल चतुर्थ और अष्टमस्थान को पूर्णदृष्टि से देखता है । तथा शुक्र, सूर्य, बुध और चन्द्रमा मात्र सप्तमस्थान को ही पूर्ण दृष्टि से देखते हैं ।। १३ ।।

इस प्रकार भारती-हिन्दीटीकासहित लघुजातक में

ग्रहभेदाध्याय समाप्त ।। २ ।।

अथ ग्रहमैत्रीविवेकाध्यायः ।। ३ ।।

मित्रामित्र में अन्य आचार्यो के मत—

मित्राण्यर्काज्जीवो ज्ञगुरु ज्ञसितौ विभास्करा विकुजाः ।
वीन्द्वर्का विकुजरवीन्दवश्च केषाञ्चिदरयोऽन्ये ।।१।।

मित्राण्यर्कादिति। अथ मित्रप्रकरणमारभ्यते। तत्रादौ परमतेन मित्रामित्राण्याह—अर्कात् प्रभृति मित्राणि तत्रादित्यस्य जीवो मित्रं शेषाः शत्रवः, चन्द्रस्य बुधजीवौ मित्रे शेषाः शत्रवः, कुजस्य बुधशुक्रौ मित्रे शेषाः शत्रवः, बुधस्य विगतार्काः सर्वे मित्राणि, रविः शत्रुः, जीवस्य विगतकुजाः सर्वे मित्राणि कुजः शत्रुः, शुक्रस्य विगतचन्द्रार्काः सर्वे मित्राणि चन्द्रार्कौ तस्य शत्रू शनैश्चरस्य विगताङ्गारकसूर्यचन्द्राः सर्वे मित्राणि चन्द्रार्कभौमास्तस्य शत्रवः एतत्केषाञ्चिदाचार्याणां मतम् ।।१।।

बृहस्पति, बृहस्पति-बुध, शुक्र-बुध, रवि वर्जित सब ग्रह, मंगल वर्जित सब ग्रह, रवि-चन्द्र वर्जित सब ग्रह, तथा मंगल-चन्द्र-रवि वर्जित शेष ग्रह-ये क्रम से सूर्य आदि ग्रहों के मित्र समझना । मित्र से अतिरिक्त ग्रहों को शत्रु समझना, ऐसा यवनादि अन्य आचार्यों का मत है ।। १ ।।

यवनोक्त मैत्री चक्र—

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	गु.	गु.बु.	शु.बु.	चं.मं.गु. शु.श.	चं.सू.बु. शु.श.	मं.बु. गु.श.	बृ.गु. शु.
शत्रु	चं.मं.बु. शु.श.	सू.मं. शु.श.	सू.चं. गु.श.	सू.	मं.	सू.चं.	मं. सू.चं.

सत्योक्त नैसर्गिक मित्रामित्र—

शत्रू मन्दसितौ समश्च शशिजो मित्राणि शेषा रवे-
स्तीक्ष्णांशुर्हिमरश्मिजश्च सुहृदौ शेषाः समाः शीतगोः ।
जीवेन्दूष्णकराः कुजस्य सुहृदो ज्ञोऽरिः सितार्की समौ
मित्रे सूर्यसितौ बुधस्य हिमगुः शत्रुः समाश्चापरे ।।२।।

सूरे: सौम्यसितावरी रविसुतो मध्योऽपरे त्वन्यथा
सौम्यार्की सुहृदौ समौ कुजगुरू शुक्रस्य शेषावरी
शुक्रज्ञौ सुहृदौ समः सुरगुरुः सौरेस्तथान्येऽरय-
स्तत्काले च दशाऽऽयबन्धुसहजस्वाऽन्त्येषु मित्रं स्थितः ।।३।।

शत्रू मन्दसिताविति। अथ सत्यमतमङ्गीकुर्वन् मित्रादिविभागं सर्वग्रहाणां तात्कालिकं मित्रामित्रं चाह–रवेर्मन्दसितौ शत्रू, बुधः समः शेषा ग्रहाः चन्द्राङ्गारकजीवाः रवेर्मित्राणि एवमादित्यस्य। अथ चन्द्रस्य तीक्ष्णांशुरित्यादि। शीतगोश्चन्द्रस्यार्कबुधौ मित्रे, शेषा भौमजीवशुक्रसौरा अस्य समाः मध्यस्था इत्यर्थः। एवं चन्द्रस्य। अथाङ्गारकस्य जीवेन्दूष्णकरा इति कुजस्य भौमस्य जीवेन्दूष्णकरा गुरुचन्द्रसूर्या मित्राणि, ज्ञो बुधः शत्रुः, सितार्की शुक्रमन्दौ समौ मध्यस्थौ। एवमङ्गारकस्य। अथ बुधस्य मित्रे सूर्यसिताविति। बुधस्यादित्यशुक्रौ मित्रे, हिमगुश्चन्द्रः शत्रुः, समाश्चापरे भौमजीवशनैश्चराः बुधस्य समा मध्यस्था एवं बुधस्य ।।२।।

अथ गुरोः सूरेरिति। सूरेर्बृहस्पतेः सौम्यसितौ बुधशुक्रौ शत्रू, रविसुतः शनैश्चरो मध्यस्थः, अपरे तु मित्राणि चन्द्राङ्गारकार्का गुरोर्मित्राणि। एवं जीवस्य अथ शुक्रस्य सौम्यार्की बुधसौरी मित्रे समौ कुजगुरु भौमजीवौ मध्यस्थौ, शेषावर्कचन्द्रावरी। एवं शुक्रस्य। अथ सौरेः। शुक्रज्ञाविति शनैः शुक्रबुधौ मित्रे जीवः समः अन्ये चन्द्रार्कभौमा अरयः। एवं सौरेः। नैसर्गिकमित्रामित्रविभाग-मुक्त्वा तात्कालिकमाह—तत्काले चेति। इष्टकाले यस्मिन्स्थाने ग्रहः स्थितस्तस्माद् दशमस्थाने एकादशे चतुर्थे तृतीये द्वितीये अन्ये द्वादशे यो ग्रहस्थितः स तात्कालिकमित्रं भवति ।।३।।

सूर्य के-शनि-शुक्र शत्रु, बुध सम और शेष (चन्द्रमा-मंगल-बृहस्पति) ये मित्र हैं । चन्द्रमा के-सूर्य-बुध मित्र तथा शेष सब ग्रह सम हैं (चन्द्रमा को नैसर्गिक शत्रु नहीं हैं) मंगल के-बृहस्पति-चन्द्रमा-सूर्य मित्र, बुध-शत्रु और शुक्र-शनि सम हैं । बुध के-सूर्य-शुक्र मित्र, बुध-शत्रु और शुक्र शनि सम हैं । बुध के-सूर्य-शुक्र मित्र, चन्द्रमा शत्रु ओर शेष ग्रह (मंगल-बृहस्पति-शनि) सम हैं । बृहस्पति के बुध-शुक्र शत्रु, शनि सम और बाकी (सूर्य-चन्द्रमा-मंगल) ग्रह मित्र

हैं । शुक्र के बुध-शनि मित्र, मंगल-बृहस्पति सम और शेष (सूर्य-चन्द्रमा) शत्रु हैं । शनि के-शुक्र बुध मित्र, बृहस्पति सम और अन्य (सूर्य-चन्द्रमा-मंगल) ये शत्रु हैं ।

सूर्य आदि सब ग्रह तत्काल में अपने-अपने आश्रित स्थान से परस्पर २।१२, ३।११, ४।१० में स्थित होने से परस्पर मित्र होते हैं । अर्थात् अन्य स्थान में शत्रु होते हैं ।। २-३ ।।

विशेष–ग्रहों के तात्कालिक शत्रु के सम्बन्ध में अन्य प्रकाशित पुस्तकों का यह श्लोक—

''मूलत्रिकोणषष्ठत्रिकोणनिधनैकराशिसप्तमगाः ।

एकैकस्य तथा सम्भवन्ति तात्कालिका रिपवः ।।"

क्षेपक जान पड़ता है, कारण 'मूल-त्रिकोण में' ऐसा पाठ आचार्य को अभिप्रेत नहीं । एवं बाकी पाठ पूर्व श्लोक में ही स्पष्ट हो चुका है ।

ग्रहों के नैसर्गिक मित्र-सम, शत्रु—

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	चं.मं. गु.	सू.बु.	सू.चं. गु.	सू.शु.	सू.चं. मं.	बु.श.	बु.शु.
सम	बु.	मं.गु. शु.श.	शु.श.	मं.गु. श.	श.	मं.गु.	गु.
शत्रु	शु.श.	×	बु.	चं.	बु.शु.	सू.चं.	सू.चं. मं

तात्कालिक शत्रु-विचार (क्षेपक)

मूलत्रिकोणषष्ठत्रिकोणनिधनैकराशिसप्तमगाः ।

एकैकस्य यथा सम्भवन्ति तात्कालिका रिपवः ।।४।।

मूलत्रिकोणेति। अर्कादीनां मूलत्रिकोणराशिः 'सिंहवृषाजप्रमदाकार्मुकभृत्तौलिकुम्भधराः' इति। षष्ठं त्रिकोणं नवपञ्चमं निधनमष्टमम् एकराशिः सप्तम एषु स्थानेषु स्थितास्तात्कालिका रिपवो भवन्ति ।।४।।

मूलत्रिकोण में एवं जिस स्थान में स्थित ग्रह हो उस स्थान से ६।५।९।८।१।७ स्थानों में स्थित ग्रह तात्कालिक शत्रु होते हैं ।। ४ ।।

नैसर्गिक एवं तात्कालिक मित्रामित्र से अधिमित्रादि विचार

मित्रमुदासीनोऽरिर्व्याख्याता ये निसर्गभावेन ।
तेऽधिसुहृन्मित्रसमास्तत्कालमुपस्थिताश्चिन्त्याः ।।५।।

मित्रमुदासीन इति। मित्रस्थानानां प्रयोजनमाह—दर्शितेषु मित्रस्थानेषु दशादिकेषु मित्रमवस्थितमधिमित्रं भवति, मध्यमस्थं मित्रं भवति, शत्रुव्यवस्थितो मध्ययस्थो भवति, अर्थादेव मित्रस्थानव्यतिरिक्तानि स्थानानि शत्रुस्थानानि भवन्ति। तानि च प्रथमपञ्चाष्टसप्तमनवमानि तेषु स्थानेषु ग्रहस्य नैसर्गिकः शत्रुर्व्यवस्थिताऽधिशत्रुर्भवति। मध्यस्थो व्यवस्थितः शत्रुर्भवति मित्रमवस्थितः समो भवति ।।५।।

पूर्व श्लोक में जो नैसर्गिकमित्र, सम और शत्रु कहे गये हैं, वे तात्कालिक मित्र हों तो उन्हें क्रम से अधिमित्र, मित्र और सम समझना चाहिए । अर्थात् नैसर्गिक और तात्कालिक दोनों मित्र हों तो अधिमित्र; एक प्रकार से मित्र और एक प्रकार से सम हो तो मित्र; एक प्रकार से मित्र और एक प्रकार से शत्रु हो तो सम समझना चाहिए । एक प्रकार से शत्रु और एक प्रकार से सम हो तो शत्रु तथा दोनों प्रकार से शत्रु हो तो अधिशत्रु समझना चाहिए ।। ५ ।।

इस प्रकार भारती-हिन्दीटीकासहित लघुजातक में
ग्रहमैत्रीविचाराध्याय समाप्त ।। ३ ।।

अथ ग्रहस्वरूपाध्यायः ।। ४ ।।

सूर्यादि ग्रहों के स्वरूप—

चतुरस्त्रो नात्युच्चस्तनुकेशः पैत्तिकोऽस्थिसारश्च ।
शूरो मधुपिङ्गाक्षो रक्तश्यामः पृथुश्चार्कः ।।१।।

चतुरस्त्र इति। अथ ग्रहाणां स्वरूपमाह—न्यग्रोधमण्डलाकारः यावदेव प्रसारितभुजद्वयस्य विस्तीर्णत्वं तावदेवास्य दैर्घ्यं नात्युच्चः किञ्चिदुच्च एव, तनुकेशी विरलकेशः, पैत्तिकः पित्तप्रकृतिः, अस्थिसारो दृढास्थिः, शूरः सङ्ग्रामप्रियः, मधुपिङ्गाक्षः ईषत्पिङ्गलोचनः, रक्तश्यामो लोहितश्यामः रक्तश्चासौ श्यामश्च, पृथुर्विस्तीर्णशरीरः, एवंविधाऽर्कः ।।१।।

सूर्य–चतुरस्त्र आकार (लम्बाई और चौड़ाई में बराबर), कुछ ऊँचे शरीरवाला परन्तु अति ऊँचा नहीं, थोड़े केशवाला, पित्ताधिक, दृढ़ अस्थिवाला, शूरवीर, मधु के समान पिंगल दृष्टि, काल और कृष्णवर्ण से युक्त तथा स्थूलकाय है ।। १ ।।

चन्द्रस्वरूपम्—

स्वच्छः प्राज्ञो गौरश्चपलः कफवातिको रुधिरसारः ।
मृदुवाग् घृणी प्रियसखस्तनुवृत्तश्चन्द्रमाः प्राशुः ।।२।।

स्वच्छ इति। स्वच्छो दर्शनीयः, प्राज्ञो मेधावी, गौरः श्वेतप्रायः, चपलः क्रियास्ववस्थितः कफवातिको वातश्लेष्मप्रकृतिः, रुधिरसारो रक्ताधिकः मृदुवावकोमलभाषी, घृणी दयावान् प्रियसखो मित्रप्रियः, तनुवृत्तः कृशवर्तुलाङ्गः, प्रांशरुच्चं: एवंविधश्चन्द्रमाः ।।२।।

चन्द्रमा–निर्मलकान्तिवाला, बुद्धिमान्, गौरवर्ण, चपल, कफ-वात-प्रकृति, अधिक रुधिरवाला, मृदुभाषी, दयालु, मित्रों पर प्रीति करने वाला, कृश तथा गोल आकृति, तथा उन्नत शरीर है ।। २ ।।

भौमस्वरूपम्—

हिंस्रो ह्रस्वस्तरुणः पिङ्गाक्षः पैत्तिको दुराधर्षः ।
चपलः सरक्तगौरो मज्जासारश्च माहेयः ।।३।।

हिस्त्रं इति। हिंस्रो दुष्टो, ह्रस्वोऽल्पोच्छ्रायः, तरुणः सदैव तरुणाकारः पिङ्गाक्षः कपिलनेत्रः, पैत्तिकः पित्तप्रकृतिः, दुराधर्षः दुराचारी, चपलोऽनेकमतिः, सरक्तगौरः पद्मपत्राग्रवर्णः मज्जासारो मज्जाधिकः एवंविधो माहेयोऽङ्गारकः।।३।।

मंगल–हिंसायुक्त, लघु शरीर, तरुण, पिंगलनेत्र, पित्तप्रकृति, दुराचारी, चञ्चल, लाल तथा गौरववर्ण एवं अधिक मज्जावाला है ।। ३ ।।

बुधस्वरूपम्—

मध्यमरूपः प्रियवाग् दूर्वाश्यामः शिराततो निपुणः ।
त्वक्सारस्त्रिस्थूणः सततं हृष्टस्तु चन्द्रसुतः ।।४।।

मध्यमरुप इति। अथ बुधस्याह—मध्यमरूपो न दर्शनीयः नाप्यदर्शनीयः, प्रियवाक् अभिमतवक्ता, दूर्वाश्यामः, शाद्वलवर्णाभः, शिराततो दृश्यस्नायुः, निपुणः क्रियासु सूक्ष्मदृक्, त्वक्सारः स्थूलत्वक् त्रिस्थूणो वातपित्तकफप्रकृतिः, सततं हृष्टो नित्यं हर्षितः एवंविधो बुधः ।।४।।

बुध–साधारण रूपवाला, मृदुवक्ता, दूर्वादल के समान श्यामल गात, विस्तृतस्नायु, चतुर, स्थूलचर्मवाला, वात-पित्त-कफ प्रकृति, सर्वदा आनन्दित रहनेवाला और चन्द्रमा का पुत्र है ।। ४ ।।

गुरुस्वरूपम्—

मधुनिभनयनो मतिमानुपचितमांसः कफात्मको गौरः ।
ईषत्पिङ्गलकेशो मेदःसारो गुरुर्दीर्घश्च ।।५।।

मधुनिभेति। बृहस्पतेराह—मधुनिभनयनः ईषत्कातरलोचनः, मतिमान् बुद्धिमान्, उपचितमांसः स्थूलदेहः, कफात्मकः श्लेष्मप्रकृतिः, गौरः श्वेतप्रायः, ईषत्पिङ्गलकेशः, मेदःसारो मेदोऽधिकः, अदीर्घः ह्रस्व एवंविधो गुरुः ।।५।।

बृहस्पति–पिङ्गलवर्ण दृष्टिवाला, बुद्धिमान्, पुष्टमांस वाला, कफप्रकृति, गौरवर्ण, पिङ्गलवर्ण बालोंवाला, अधिक मेदा से युक्त तथा दीर्घ शरीरवाला है।।५।।

शुक्रस्वरूपम्—

श्यामो विकृष्टपर्वा कुटिलासितमूर्द्धजः सुखी कान्तः ।
कफवातिको मधुरवाग्भृगुपुत्रः शुक्रसारश्च ।।६।।

श्याम इति। श्यामः किञ्चित्कृष्णाङ्गः, विकृष्टपर्वा विरलशरीरसन्धिः, कुटिलासितमूर्द्धजः कुञ्चितकृष्णकेशः, सुखी भोगी, कान्तो दर्शनीयः, कफवातिको वातश्लेष्मप्रकृतिः मधुरवाक्कोमलभाषी, शुक्रसारः शुक्राऽधिकः एवंविधः शुक्रः ।।६।।

शुक्र–श्यामवर्ण, विरलशरीरसन्धि वाला, काले घुँघराले केशवाला, सुखी, सुन्दर देखने योग्य, कफ-वायु प्रकृति, मधुरभाषी तथा अधिक वीर्य युक्त है ।। ६ ।।

शनिस्वरूपम्—

कृशदीर्घः पिङ्गाक्षः कृष्णः पिशुनोऽनिलप्रकृतिः ।
स्थूलनखदन्तरोमा शनैश्चरो स्नायुसारश्च ।।७।।

कृशदीर्घ इति। अथ शनिमाह—कृशदीर्घो दुर्बलोन्नतः, पिंगाक्षः कपिलनेत्रः, कृष्णः श्यामवर्णवान्, पिशुनः पररन्ध्रसूचकः, अलसो मन्थरगामी, अनिलप्रकृतिः वातात्मकः स्थूलनखदन्तरोमास्नायुसारः एवंविधः शनैश्चरः।।७।।

शनि-दुबला और लम्बा शरीर, कपिलनेत्र, काला, परनिन्दक, आलसी, वात प्रकृति, मोटे-मोटे नख तथा दाँतवाला, अधिक रोमयुक्त तथा स्नायुसार है।।७।।

ग्रहों का स्वरूप तथा गुण

एते ग्रहा बलिष्ठाः प्रसूतिकाले नृणां स्वमूर्तिसमम् ।
कुर्युर्देहं नियतं बहवश्च समागता मिश्रम् ।।८।।

जातक के जन्म समय में बलवान् ग्रह अपने स्वरूप और गुण के समान ही जातक को बनाते हैं । यदि जन्म के समय अनेक ग्रह बलवान् हों तो जातक में तदनुसार मिश्रित स्वरूप और गुण होते हैं ।। ८ ।।

इस प्रकार भारती-हिन्दीटीकासहित लघुजातक में
ग्रहस्वरूपाध्याय समाप्त ।। ४ ।।

अथ गर्भाधानाध्यायः ।। ५ ।।

आधानलग्न से संभोग ज्ञान—

आधानेऽस्तगृहं यत्तच्छीलो मैथुने पुमान् भवति।
सायासमसद्युतवीक्षिते विदग्धं शुभैरस्ते ।।१ ।।

आधानेऽस्तगृहं। अथाधानं व्याख्यास्यामः। तत्रादौ मैथुनकृतज्ञानमाह– आधानं बीजक्षेपः तत्र आधाने प्रश्नकाले च यो लग्नराशिस्तस्माद्यो राशिः सप्तमं तन्नामा जन्तुर्येन प्रकारेण मैथुनं करोति तेन प्रकारेण युक्तो मैथुनकारी पुमानिति वक्तव्यम्। तस्मिन्सप्तमे स्थाने पापग्रहैर्युते दृष्टे वा तन्मैथुनं सायासं श्रमयुक्तमासीत्। तस्मिन्नेव सप्तमे स्थाने शुभैर्युते दृष्टे वा विदग्धं श्रमरहितं च तन्मैथुनमासीत्। मिश्रैर्युते दृष्टे वोभयरूपं सामान्यात्। न केनचिद्युते न दृष्टे वा न सायासं नापि विदग्धमिति ।।१ ।।

गर्भाधान कालिक कुण्डली में लग्न से सातवें भाव में जो राशि रहे उसी के अनुसार (अर्थात् जो राशि जिस प्रकार रति संभोग करती है तदनुकूल) पुरुष द्वारा मैथुनक्रिया समझना। यदि सप्तम भाव पापग्रह से युत या दृष्ट हो तो मैथुन को श्रम-कलहयुक्त और यदि शुभग्रह से युत-दृष्ट हो तो हास्य-विलास पूर्वक मैथुनक्रिया सम्पन्न हुई है, ऐसा समझना चाहिऐ ।। १ ।।

आधानलग्न से दीप का ज्ञान—

सौरांशेऽब्जांशे वा चन्द्रः सौरान्वितोऽथ हिबुके वा ।
शान्तो दीपो जन्मन्याधाने चेन्न रविदृष्टः ।।२ ।।

सौरांश इति। आधानकाले जन्मकाले प्रश्नकाले वा दीपस्याभाव-ज्ञानमाह—सौरांशे यत्र तत्र राशौ मकरकुम्भयोरन्यतरनवांशस्थे चन्द्रमसि तमस्यन्धकारे आधानं प्रसवश्च वक्तव्यः। अब्जांशे वा कर्कटमीनयोरन्यत-मनवांशस्थे वा चन्द्रमसि तमस्येव। अथवा यत्र तत्रावस्थितश्चन्द्रमाः शनैश्चरयुतस्तदा तमस्येव अथवा लग्नाच्चन्द्रश्चतुर्थो भवति तदाऽन्धकार एव शान्तो दीपः प्रशान्त इत्यर्थः। एतदाधानलग्नाज्जन्मलग्नात् प्रश्नलग्नाच

विचारणीयम्। अत्र सर्वयोगेषु यद्यर्कयुक्तश्चन्द्रमा: भवति तदाऽन्धकाराभाव:।।२।।

गर्भाधान अथवा जन्मसमय से यदि चन्द्रमा शनि के अथवा जलचर (कर्क, मीन, मकरोत्तरार्ध) राशि के नवांश में हो अथवा चन्द्रमा लग्न से चतुर्थ स्थान में शनि से युक्त हो तो दीप का अभाव, यदि उस पर सूर्य की दृष्टि न हो तो अर्थात् यदि सूर्य की दृष्टि हो तो दीपक प्रज्वलित समझना चाहिऐ ।। २ ।।

गर्भाधान-समय से जन्म-समय का ज्ञान (क्षेपक)

चन्द्रो यावत्सङ्ख्ये द्वादशभागे निषेकसमये स्यात् ।
तस्मात् तावति राशौ जन्मेन्दौ सम्भवे मासि ।।३।।

गर्भाधान के समय जिस द्वादशांश में चन्द्रमा हो उससे उतने ही संख्यक राशि में उतने ही द्वादशांश पर जब दसवें मास में चन्द्रमा जाता है, तो जातक का जन्म होता है ।। ३ ।।

विशेष–जैसे गर्भाधान-समय में चन्द्रमा कन्या राशि का पाँचवाँ द्वादशांश मकर का है, तो मकर से पाँचवें वृष राशि के उतने ही अंश पर दशवें मास में जब चन्द्रमा जायेगा तब जन्म होगा, ऐसा समझना चाहिए ।

बहुकाल प्रसव का ज्ञान

उदयति मृदुभांशे सप्तमस्थे च मन्दे
यदि भवति निषेक: सूतिमब्दत्रयेण ।
शशिनि तु विधिरेष द्वादशेऽब्दे प्रकुर्या-
न्निगदितमिह चिन्त्यं सूतिकालेऽपि युक्त्या ।।४।।

लग्न में शनि राशि (मकर या कुंभ) का नवांश हो और लग्न से सप्तमस्थ शनि हो-यदि ऐसे योग में गर्भाधान होता है तो उस दिन से तीसरे वर्ष में जातक का जन्म होगा । ठीक इसी प्रकार का योग यदि चन्द्रमा से हो अर्थात् किसी भी लग्न में चन्द्रमा (कर्क) का नवांश हो और लग्न से चन्द्रमा सप्तमस्थान में हो तो ऐसे योग में गर्भाधान होने पर द्वादश वर्ष में जातक का

जन्म होता है । गर्भाधान लग्न से जो फल कहा गया है, उसे जन्म-लग्न से भी (यथासंभव) समझना चाहिऐ ।। ४ ।।

गर्भाधानकालिक अशुभयोग—

यमवक्रौ द्युनेऽर्कात् पुंसो रोगप्रदौ स्त्रियश्चन्द्रात् ।
तन्मध्यगयोर्मृत्युस्तदेकयुतदृष्टयोश्चैवम् ।।५।।

यमवक्राविति। आधानजन्ममध्ये पित्रोः शुभाऽशुभज्ञानमाह–आधानकाले प्रश्नकाले वा अर्काक्रान्तराशितः सप्तमे स्थाने यदि शनिभौमौ भवतस्तदा प्रसवादवार्क् पुरुषस्य रोगादौ व्याधिकरावित्यर्थः। एवं चन्द्रात् सप्तमे राशौ शनिभौमौ भवतस्तदा स्त्रियो रोगकरौ भवतः। तन्मध्यगयोः मृत्युः। तदिति शनैश्चराङ्गारकौ तयोर्मध्यस्थितयोश्चन्द्रार्कयोर्यथासङ्ख्येन स्त्रीपुंसोर्मृत्युकरौ भवतः। तत्रादित्याद्यदा शनिभौमयोरेको द्वादशस्थो द्वितीयो द्वितीयस्थो भवति तदा प्रसवादर्वाक् पुरुषो म्रियते। अथ चन्द्रादेको द्वादशस्थो द्वितीयो द्वितीयस्थो भवति तदा प्रसवादर्वाक् स्त्री म्रियत इत्यर्थः। तस्मिन्नपि राशौ शनिभौमाभ्यामेकेन भुक्तांशकानतिक्रम्य द्वितीयेन भुज्यमानमप्राप्य यद्यर्कचन्द्रयोरन्यतरस्यावस्थानं तदाप्यसौ मध्यगत एव भवति। तदापि स्त्रीपुंसयोरेकतरस्य मृत्युर्भवति। तदेकयुतदृष्टयोश्चैवमिति। तयोः शनिभौमयोर्मध्यादेकेन भानुर्यदा युक्तः परेण दृश्यते तदा प्रसवादर्वाक् स्त्री म्रियत इति ।।५।।

गर्भाधानकाल में सूर्य से सप्तम स्थान में शनि और मंगल हो तो ये दोनों पुरुष के लिए रोगप्रद होते हैं । और यदि यही दोनों (शनि, मंगल) चन्द्रमा से सप्तम में हो तो स्त्री के लिये रोगप्रद होते है । तथा इनके (शनि, मंगल) के बीच में सूर्य हो तो पुरुष की और चन्द्र हो तो स्त्री की मृत्यु होती है । एवं यदि सूर्य इनमें से एक से युत और एक से दृष्ट हो तो पुरुष की एवं यदि इस प्रकार चन्द्रमा हो तो स्त्री के लिये अशुभकारक समझना ।। ५ ।।

विशेष–यहाँ रवि और चन्द्रमा से १५ अंशावधि मात्र आगे और पीछे यदि शनि, मंगल हो तो रवि चन्द्र को मध्यस्थ मानना चाहिऐ । इससे अधिक

अन्तर पर शनि, मंगल के रहने से मध्यस्थ होने पर भी फल का अभाव समझना।

आधान से १० मासों में गर्भ के रूप और फल—

कललघनावयवास्थित्वग्रोमस्मृतिसमुद्भवाः क्रमशः ।
मासेषु शुक्रकुजजीवसूर्यचन्द्रार्किसौम्यानाम् ।।६।।
अशनोद्वेगप्रसवाः परतो लग्नेशचन्द्रसूर्याणाम् ।
कलुषैः पीडा पतनं निपीडितैर्निर्मलैः पुष्टिः ।।७।।

कललघनेति। आधानमासादारभ्य माससप्तकाधिपतीन् ग्रहानाह–गर्भः प्रथमे मासे कललरूपो भवति शुक्रशोणितमिश्रीभूतः तत्र गर्भस्य प्रथमे मासे शुक्रोऽधिपतिः। द्वितीये शुक्रशोणितस्य घनत्वं भवति तत्र कुजोऽधिपतिः। तृतीये मासे गर्भस्य हस्ताद्यवयवोत्पत्तिर्भवति तत्र जौवोऽधिपतिः। चतुर्थे मासि गर्भस्यास्थिसम्भवो भवति तत्राऽर्कोऽधिपतिः। पञ्चमे मासि त्वक् चर्मसम्भवो भवति तत्राधिपतिश्चन्द्रः। षष्ठे रोमाणि जायन्ते तत्र शनिरधिपतिः। सप्तमे स्मृतिसमुद्भवश्चैतन्यं भवति तत्र बुधोऽधिपतिः। अतः क्रमेण मासत्रये गर्भस्य लक्षणं मासाधिपतीन् मासाधिपतिप्रयोजनमाह—तत्राष्टमे मासि गर्भो मातुर्भुक्तमश्नाति तत्र तस्याधानलग्नस्य अधिपतिः स्वामी। नवमे मासि तस्य गर्भस्योद्वेगो भवति तत्र चन्द्रोऽधिपतिः। दशमे मासि प्रसवो भवति तत्राऽर्कः स्वामी। प्रयोजनमाह–कलुषैरिति। अधानकाले यः कलुषो विवर्णस्तस्य सम्बन्धिनि मासि गर्भस्य पीडा वक्तव्या। निपीडितैरिति। ग्रहेणान्येन ग्रहयुद्धे विजिते शिखिशिखाध्वस्ते उल्काहते वा ग्रहे तस्मिन्मासि गर्भपतनं वक्तव्यम्। निर्मलैः रश्मिसंयुवतैर्गर्भस्य पुष्टिर्वक्तव्या ।।६-७।।

गर्भाधान से प्रथम में कलल (शुक्र-शोणित सम्मिश्रण), दूसरे में धन (पिण्ड), तीसरे में अंकुर (हस्त-पादादि अवयव), चौथे में अस्थि, पाँचवें में चर्म, छठे में रोम (लोम), सातवें में चैतन्य होता है । एवं इन सातों के स्वामी क्रम से-शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति, सूर्य, चन्द्रमा, शनि और बुध हैं । इसके बाद आठवें मास में अशन (माता के द्वारा भुक्त रसों का पान), नवें मास में उद्वेग

(गर्भ से निकलने की उत्कण्ठा) और दसवें मास में प्रसव होता है, और इन तीनों मासों के स्वामी क्रम से गर्भाधानकालिक लग्नेश, चन्द्रमा और सूर्य समझना । गर्भाधान काल में जिस मास का स्वामी कलुषित (शत्रु युत् दृष्ट, नीचस्थित आदि) हो तो उस मास में पीड़ा और जिसका स्वामी निपीड़ित (युद्ध में पराजित) हो, उस मास में गर्भ का पतन एवं जिस मास का स्वामी निर्मल (स्वच्छ रश्मि) हो उसमें गर्भ में सुख (पुष्टि) समझना ।। ६-७ ।।

गर्भाधान लग्न से गर्भ-संभव-ज्ञान

बलयुक्तौ स्वगृहांशेष्वर्कसितावुपचयर्क्षगौ पुंसाम् ।
स्त्रीणां वा कुजचन्द्रौ यदा तदा गर्भसम्भवो भवति ।।८।।

बलयुक्ताविति। गर्भसम्भवासम्भवज्ञानमाह—यत्र कुत्र राशौ स्वराश्यं-शकस्थावादित्यशुक्रौ बलयुक्तौ पुरुषस्य जन्मलग्नाज्जन्मराशेर्वा उपचयस्थाने भवतो यदा तदा गर्भस्य सम्भवो वक्तव्यः। यदा अङ्गारकचन्द्रौ स्वराशिनवांशस्थौ भवतः स्त्रियश्चोपचयर्क्षगौ भवतो तदाऽपि गर्भसम्भवो भवति ।।८।।

स्वराशि के नवांश में स्थित बलवान् सूर्य और शुक्र यदि पुरुष की जन्म-राशि से उपचय स्थान (३।६।१०।११) में हों अथवा स्वराशि नवांशस्थित चन्द्रमा और मंगल यदि स्त्री की जन्म-राशि से उपचय स्थान में हों तो गर्भ-संभव समझना चाहिऐ । अर्थात् ऐसे योगों में गर्भधारण होता है ।। ८ ।।

गर्भसंभव योग भी नपुंसक के लिये निष्फल

लग्ने बलिनि गुरौ वा नवपञ्चमसंस्थितेऽपि वा भवति ।
योगा हतबीजानामफला वीणेव बधिराणाम् ।।९।।

लग्ने बलिनीति। गर्भसम्भवयोगनिष्फलत्वं चाह–अथवा यदा लग्नपञ्चमनवमानामेकस्मिन् स्थाने बलवान् बृहस्पतिर्भवति तदा गर्भसम्भवो वाच्यः। अथवाऽऽदित्यचन्द्रशुक्राङ्गारकाः सर्वे एव यदि स्वभागगाः स्त्रीपुंसोश्चोप-चयस्था भवन्ति तदाऽपि गर्भसम्भवो भवति। यदुक्तं च वराहेनरवीन्दुशुक्रा-वनिजैरिति। हतबीजानां मध्ये स्त्रीपुंसोः अन्यतमो हतबीजो भवति तस्मिन् हतबीजे इमे योगा निष्फला ज्ञेयाः। किमिवेत्याह–यथा वीणा बधिराणां वाद्यमाना

श्रुतिमुखं न जनयति तथैतेऽपि योगा:। षण्ढानां संयुक्तानामपि गर्भसम्भवं न कुर्वन्ति ।।९।।

अथवा बलवान् गुरु लग्न में होने अथवा नवम, पंचम स्थान में होने पर भी गर्भसंभव नहीं होता है । यह योग नपुंसकों के लिये उसी प्रकार निष्फल होता है, जैसे बधिरों के लिए वीणा का शब्द निष्फल है ।। ९ ।।

गर्भ में पुत्र, कन्या का ज्ञान—

विषमर्क्षे विषमांशे संस्थिताश्च गुरुशशाङ्कलग्नार्का: ।
पुञ्जन्मकरा: समभेषु योषितां समनवांशगता: ।।१०।।

विषमर्क्ष इति। अथ गर्भसम्भवज्ञानानन्तरं गर्भज्ञानमाह- विषमस्थैर्मेष-मिथुनादिस्थैर्यथासम्भवं सर्वैरेव बृहस्पतिचन्द्रार्कलग्नै: न केवलं, यावत् प्रदर्शितराशिसम्बन्धिनवांशकगतैर्ग्रहैर्गर्भे पुरुषसम्भवो वक्तव्यं। समभेष्विति। एते बृहस्पतिचन्द्रलग्नार्का यदि समराशिषु वृषादिषु स्थितास्तदा स्त्रीजन्म कथनीयम्। न केवलं यावत्तत्सम्बन्धिनवांशकगता यदा भवेयु: तदाऽपि योषितां जन्मकरा भवन्ति। यथाऽभिहिता उभयविकल्पे यत्रैव बहव: स्थितास्तल्लिङ्गासम्भवनिर्देश: साम्ये च बलाधिकवशात्। उक्तञ्च बृहज्जातके—'ओजर्क्षे पुरुषांशकेषु बलिभिर्लग्नार्कगुर्विन्दुभि:। पुंजन्म प्रवदेत् समांशसहितैर्युग्मेषु तैर्योषित:'।। इति।।१०।।

बृहस्पति, चन्द्रमा, लग्न और सूर्य ये विषमराशि और विषमनवांश में हो तो पुरुष, (पुत्र) का जन्म, तथा ये ही चारों यदि समराशि समनवांश में हो तो स्त्री (कन्या) का जन्म कहना ।। १० ।।

पुत्र, कन्या, यमल योग—

बलिनौ विषमेऽर्कगुरु नरं स्त्रियं समगृहे कुजेन्दुसिता: ।
यमलं द्विशरीरांशेष्विन्दुजदृष्टा: स्वपक्षसमम् ।।११।।

बलिन इति। पुनरपि गर्भलिङ्गज्ञानं यमलसम्भवज्ञानं चाह—विषमराशिगतौ यथासम्भवमादित्यबृहस्पती बलयुक्तौ भवतस्तदा नरो गर्भस्थो वाच्य:। समराशिष्वेवं यथासम्भवं सर्वे एव कुजचन्द्रशुक्रा बलिनो यदा

भवन्ति तदा स्त्रीगर्भश्चेति वक्तव्यम्। यमलौ द्विशरीरांशेष्विति। द्विशरीरराशिनवांशकस्था आदित्यगुरुकुजेन्दुसिता बुधदृष्टाः यमलौ स्वपक्षे कुर्वन्ति। एतदुक्तं भवति–चत्वारो द्विःस्वभावा मिथुनमीनकन्याधन्विनः। तत्र मिथुनधन्विनौ पुरुषांशकौ कन्यामीनौ स्त्र्यंशकौ तेन यथासम्भवं मिथुनधन्वंशगतावादित्यगुरु यदि बुधेन यत्र तत्रावस्थितेन दृश्यन्ते तदा यमलौ द्वौ पुरुषौ वाच्यौ। एवं यथासम्भवं कन्यामीनांशगताः कुजेन्दुसिता यत्र तत्रावस्थितेन बुधेन दृश्यन्ते तदा यमले द्वे कन्ये वाच्ये। अथ दर्शितग्रहपञ्चकमपि द्विःस्वभावराशिसंस्थं यथा बुधः पश्यति तदा एकः पुरुषो वक्तव्य एका च कन्या वक्तव्या ।।११।।

सूर्य और बृहस्पति ये दोनों बली होकर विषमराशि में हो पुत्र का, और यदि मङ्गल, चन्द्रमा, शुक्र ये बली होकर समराशि में हो तो कन्या जन्मकारक होते हैं । तथा यदि ये ही योगकारक ग्रह द्विस्वभाव राशिनवांश में हो और उस पर बुध की दृष्टि हो तो अपने पक्ष में यमल (दो बच्चों) का जन्म समझना।।११।।

विशेष–यह कि यदि पुरुषराशि द्विस्वभाव (मिथुन, धनु) के नवांश में हो तो दो पुत्र, यदि स्त्री द्विस्वभाव (कन्या, मीन) के नवांश में हो तो दो कन्याएँ, एवं यदि एक पुरुष राशिनवांश में और एक स्त्री राशिनवांश में हो तो गर्भ में एक लड़का और एक लड़की समझना ।

विशेष—

लग्नाद्विषमोपगतः शनैश्चरः पुत्रजन्मदो भवति ।
निगदितयोगबलाबलमवलोक्य विनिश्चयो वाच्यः ।।१२।।

लग्नाद्विषमेति। पुंजन्मयोगान्तरं स्त्रीपुरुषयोगयोर्द्वयोरपि सम्भवे सति निश्चयो वाच्य इत्याह—लग्नं भुक्त्वा विषमर्क्षगः सौरिः लग्नात् तृतीयपञ्चमसप्तमनवमैकादशस्थानानामन्यतमस्थानस्थो यदा भवति तदा पुत्रजन्मदो भवति। एतान्योगान्दृष्ट्वा जन्मसमये प्रश्नकाले वा नरोत्पत्तिर्विज्ञेया।

निगदितेत्यादि—यत्र पुरुषयोगसम्भवः स्त्रीजन्मसम्भवश्च तत्र यो यागो बलवद्ग्रहाभिनिवृत्तस्तद्वशादेकतमस्य सम्भवो वक्तव्यः ।।१२।।

एवं यदि शनि लग्न से विषम (१, ३, ४ आदि) स्थान में हो तो पुत्र का जन्म कहना । ऊपर जो योग सब कहे गये हैं उनमें योगकारक ग्रहों के बलाबल देखकर निश्चय करना चाहिऐ ।। १२ ।।

इति लघुजातके गर्भाधानाध्यायः ।। ५ ।।

अथ सूतिकाध्यायः ।। ६ ।।

गुरुराशिरवयः सत्त्वं रजः सितज्ञौ तमोऽर्कसुतभौमौ ।
एतेऽन्तरात्मनि स्वां प्रकृतिं जन्तोः प्रयच्छन्ति ।।१।।

गुरुशशिति। ग्रहाणां सात्त्विकादिविभागमाह—बृहस्पतिचन्द्रादित्याः सात्त्विकाः, बुधशुक्रौ राजसौ शनैश्चराङ्गारकौ, तामसौ एते ग्रहाः जन्तोः स्वामात्मीयां प्रकृतिं प्रयच्छन्ति। पूर्वोक्तविधिना त्रिंशांशे यस्य भास्करः तादृक् इति ननु चन्द्रार्कयोः सात्त्विकत्वेन किं प्रयोजनमुच्यते तयोर्गुणमात्रमेव ।।१।।

बृहस्पति-चन्द्रमा-सूर्य ये सत्त्वगुणी, शुक्र-बुध रजोगुणी तथा शनि-मंगल ये दोनों तमोगुणी हैं । ये जातक के अन्तःकरण में अपनी प्रकृति (गुण, आकृति आदि) देते हैं ।। १ ।।

जातक के गुण-वर्णादि—

सत्त्वं रजस्तमो वा त्रिंशांशे यस्य भास्करस्तादृक् ।
बलिनः सदृशी मूर्तिबुध्वा वा जातिकुलदेशान् ।।२।।
पूर्वविलग्ने यादृग् नवभागस्तादृशी भवति मूर्तिः ।
यो वा ग्रहो बलिष्ठस्तत्काले तादृशी वाच्या ।।३।।

सत्त्वमिति। अथ सूतिकाध्यायं व्याख्यास्यामस्तत्रादावेव जातस्य सात्त्विकराजसतामसत्त्वनिरूपणाय शरीराकारज्ञानमाह—यस्य जन्मकाले भास्कर आदित्यः सात्त्विकत्रिंशांशे व्यवस्थितस्तदा सात्त्विको जात इति वक्तव्यम्। एवं राजसादौ। बलिनः सदृशी मूर्तिरिति पुरुषस्य जन्मसमये यो ग्रहोऽति- बलवांस्तस्य सदृशी 'चतुरस्रो नात्युच्चः इत्यादिप्रदर्शितमिति तस्य यथाविधमेव वक्तव्यं अथवा लग्ननवांशस्याधिपतेस्तुल्या मूर्तिर्वक्तव्या। उक्तं च—'लग्ननवांशपतुल्यतनुः स्याद्वीर्ययुतग्रहतुल्यतनुर्वेति बुध्वा वा जातिकुल-देशानिति पूर्वमूर्तिनिर्देशः। श्वपाकशबरनिषादा जातित एव कृष्णा भवन्ति। तेषामेव निर्देशः। कस्मिन् कुले कोऽसौ जातो गौराणां कृष्णानां वा देशं च बुध्वा मूर्तिनिर्देशः। कस्मिन् देशे कोऽयं जात इति यथा कर्णाटकाः सर्वे एव कृष्णा भवन्ति। वैदेहाः सर्वे एव श्यामाः। काश्मीराः सर्वे गौरा एव ।।२-३।।

जन्मसमय में सूर्य जिस ग्रह के त्रिशांश में हो उसी ग्रह के सदृश जातक में भी सत्त्वादि (सत्त्व, रज, तम) गुण समझना । तथा जन्मसमय जो ग्रह सबसे बली हो उसके समान अथवा प्रथम (जन्म लग्न) में जिस प्रकार गुण युक्त ग्रह का नवांश हो उसके समान ही जातक का भी स्वरूपादि समझना । परञ्च जाति, कुल, देश का विचार कर तदनुसार फल का विचार करना चाहिऐ ।। २-३ ।।

विशेष–यहाँ वर्ण आकृति आदि का ज्ञान देश, कुल, जाति के अनुसार भी तारतम्य से समझना चाहिऐ । क्योंकि माता-पिता के रंग रूप एवं देश (स्थान विशेष) का प्रभाव जातक पर निशिचत रूप से पड़ता ही है ।

पिता के परोक्ष में जन्म—

चन्द्रे लग्नमपश्यति मध्ये वा शुक्रसौम्ययोश्चन्द्रे ।
जन्म परोक्षस्य पितुर्यमोदये वा कुजे वाऽस्ते ।।४।।

चन्द्र इति। जातस्य पितुः सन्निधानमसन्निधानं चाह—यस्य जन्मलग्नं चन्द्रो न पश्यति तस्य पितुः परोक्षे जन्म वक्तव्यं, शुक्रसौम्ययोर्मध्यगते चन्द्रे सति पितुः परोक्षे जन्म वक्तव्यम्। यस्य जन्मलग्नस्थः शनैश्चरो भवति तस्य पितुः परोक्षे जन्म वक्तव्यम्। यस्य लग्नाद् भौमः सप्तमो भवति तस्यापि पितुः परोक्षे जन्म वक्तव्यम् ।।४।।

चन्द्रमा लग्न को न देखता हो अथवा चन्द्रमा बुध और शुक्र के बीच में हो या शनि लग्न में हो या मङ्गल सप्तम में हो तो इन योगों में पिता की अनुपस्थिति में बालक का जन्म कहना ।। ४ ।।

परजात जन्मयोग—

पापयुतोऽर्कः सेन्दुः पश्यति होरां न चन्द्रमपि जीवः ।
पश्यति सार्कं नेन्दुं यदि जीवो वा परैर्जातः ।।५।।

पापयुतोऽर्क इति। अथ परजातस्य ज्ञानमाह—चन्द्रार्कावेकराशिगतौ तत्र पापग्रहोऽङ्गारकः शनैश्चरो वा भवति तदा परजातो वक्तव्यः। अथवा चन्द्रे लग्नं बृहस्पतिर्नोभयं पश्यति न दृश्यते तदाऽपि परजातो वक्तव्यः। अथवाऽर्कचन्द्रावेकराशिगतौ जीवो न पश्यति तदाऽपि परजातो वक्तव्यः ।।५।।

सूर्य यदि पाप (शनि, मङ्गल) और चन्द्रमा से युक्त होकर लग्न को न देखता हो, अथवा पापयुक्त सूर्य चन्द्रमा को न देखें या चन्द्र से युक्त सूर्य हो और उसको बृहस्पति न देखता हो तो ऐसे योग में जन्म लेने वाले को परजात (अन्य से उत्पन्न) समझना ।। ५ ।।

विशेष–इन कथित योगों में यदि बृहस्पति की दृष्टि हो तो जातक को परजात योग होने पर भी परजात नहीं समझना चाहिऐ ।

सूतिका के गृह का द्वार—

द्वारं वास्तुनि केन्द्रोपगाद् ग्रहादसति वा विलग्नर्क्षा ।
दीपोऽर्कादुदयाद् वर्तिरिन्दुतः स्नेहनिर्देशः ।।६।।

द्वारमिति। सूतिकागृहज्ञानं दीपज्ञानं चाह—'प्राच्यादीशाः' इत्यादिना या दिक् यस्य ग्रहस्योक्ता तस्मिन् ग्रहे केन्द्रोपगते तद्दिगभिमुखद्वारं सूतिकागृहं वक्तव्यम्। बहुषु केन्द्रगतेषु यो बलवांस्तद्दिगभिमुखं वाच्यम्। अन्ये लग्नद्वादशांशराशिदिगभिमुखं वर्णयन्ति। अन्ये तदधिपदिगभिमुखं कथयन्ति। असति वा विलग्नर्क्षादिति। शून्येषु केन्द्रेषु लग्नराशेर्या दिगभिहिता तद्दिगभिमुखं द्वारं सूतिकागृहं वक्तव्यम्। दीपोऽर्कादिति—चरराशिव्यवस्थितेऽर्के सञ्चार्यमाणो दीप आदेश्यः। स्थिरराशिस्थेऽर्के एकदेशस्थः द्विःस्वभावराशिस्थे चालितः स्थापितश्चेति। उदयाद्वर्तिः आदेश्या। लग्नारम्भक्षणे क्षिप्तैका वर्तिः। लग्नावसाने सर्वा दग्धा। अन्तरालेऽनुपापतो वर्तिदग्धप्रमाणं वक्तव्यम्। इन्दुतः स्नेहनिर्देश इति। यत्र राशौ चन्द्रमा व्यवस्थितः तत्र यदि प्रारम्भ एव स्थितो भवति तदा स्नेहभाजनं पूर्णं वक्तव्यम्। यद्यन्तिमभागे तदा दीपभाजनं स्नेहान्तं वक्तव्यं मध्येऽर्धम्, अन्यत्रानुपातः ।।६।।

केन्द्र (१।४।१०।७) स्थित ग्रहों से सूतिकागृह द्वार समझना (केन्द्र में बहुत ग्रह हो तों बलवान् ग्रह की दिशा में) एवं यदि केन्द्र में ग्रह न हों तो लग्न राशि की जो दिशा हो, उस दिशा में द्वार समझना चाहिए । तथा सूर्य से दीप, चन्द्र से तेल और लग्न से बत्ती का आदेश करना ।। ६ ।।

विशेष—चन्द्रमा के अंशानुसार दीप में तेल का प्रमाण समझना । अर्थात् चन्द्रमा राशि के आरंभ अंश में हो तो दीप में तेल पूर्ण, राशि के अन्त अंश में हो तो तेल का भी अन्त, मध्य में अंशानुपात से तेल प्रमाण समझना । एवं उदय (लग्न) के अंश से वाती का प्रमाण भी इसी प्रकार समझना । (१२, लग्न, २) ये पूर्व में, (३, ४, ५) ये उत्तर में, (७, ८, ६) ये पश्चिम में, तथा (९, १०, ११) ये भाव सर्वदा दक्षिण दिशा में रहते हैं । इसका अभिप्राय यह है कि लग्नादिद्वादशभाव के अनुसार सूर्य जिस दिशा में रहे उस दिशा में दीप की स्थिति समझना । कतिपय टीकाकारों ने ''दीपोऽर्कात्'' से सूर्य जिस (चर, स्थिर, द्विस्वभाव) राशि में रहे तदनुसार दीपक की भी स्थिति समझना, ऐसा अर्थ किये हैं—सो परम असङ्गत एवं प्रत्यक्ष विरुद्ध है । कारण सूर्य तो एक राशि में १ मास तक रहता है, तो क्या १ मास तक दीप की स्थिति सर्वत्र भला एक जैसी रह सकती है ? ऐसा असम्भव है ।

सूतिकागृह का स्वरूप—

अदृढं नवमथ दग्धं चित्रं सुदृढं मनोरमं जीर्णम् ।
गृहमर्कादिकवीर्यात् प्रतिभवनं सन्निकृष्टैश्च ।।७।।

अदृढमिति। सूतिकागृहस्वरूपज्ञानमाह— अर्काद्यैर्ग्रहैर्वीर्याद् बलाधिक्यात् सूतिकागृहं वाच्यम्। तत्र सर्वग्रहेभ्योऽर्के बलवति सति सूतिकागृहमदृढं वाच्यम्। चन्द्रे बलवति नवं, भौमे दग्धं, बुधे चित्रं, बृहस्पतावत्यन्तदृढं, शुक्रे मनोरमं, शनैश्चरे जीर्णम्। प्रतिभवनं सन्निकृष्टैश्चेति—सन्निकृष्टैः प्रतिभवनं वक्तव्यम्। गृहादातृग्रहस्य पुरतः पश्चाद्वा ये ग्रहाः स्थितास्तेनैव क्रमेण सूतिकागृहात् प्रतिभवनं वाच्यम् ।।७।।

जन्मकाल में यदि सब ग्रहों की अपेक्षा सूर्य बलवान् हो तो सूतिकागृह अदृढ़ (कमजोर), चन्द्र बली हो तो नवीन, मङ्गल बली हो तो जला हुआ, बुध बली हो तो कलापूर्ण, बृहस्पति बली हो तो सुदृढ़ (अत्यन्त मजबूत), शुक्र बली हो तो परम मनोरम (रमणीक) तथा शनि बली हो तो जीर्ण (संस्कार युत, मरम्मत किया हुआ) कहना । और उसी ग्रह के समीपवर्ती अर्थात् सम्मुख,

वाम, दाहिने और पृष्ठस्थित ग्रहों के अनुसार उपगृह का स्वरूप भी कहना चाहिये ।। ७ ।।

विशेष–अपने से सप्तम सम्मुख, चतुर्थभाव दाहिना, दशमभाव वाम तथा साथ में रहने वाला ग्रह पृष्ठभाग गत समझना चाहिए । अभिप्राय यह है कि बली ग्रह से जिस भाग में जो-जो ग्रह हों उस-उस भाग में उन ग्रहों के समान उक्त रीति से अन्य भवनों (उपगृहों) का भी विचार करना चाहिये ।

सूतिकागृह के मञ्जिल और बरामदा का ज्ञान—

गुरुरुच्चो दशमस्थो द्वित्रिचतुर्भूमिकं गृहम् ।
धनुषि सबलस्त्रिशालं द्विशालमन्येषु यमलेषु ।।८।।

गुरुरुच्च इति। गृहभूमिकाशालाज्ञानमाह—बृहस्पतिरुच्चस्थो लग्नाद्यदि दशमस्थाने भवति तदा द्वित्रिचतुर्भूमिकं गृहं वक्तव्यम्। कथमुच्यते–यदा परमोच्चभागान् पञ्चातिक्रम्य स्थितो भवति तदा द्विभूमिकं करोति गृहम्। यदा भागः पञ्चमादर्वाक् भवति तदा त्रिभूमिकं करोति। यदा पञ्चभागे भवति तदा चतुर्भूमिकं करोति। धनुषीत्यादि—धनुर्धरस्थे जीवे बलोपेते तदा त्रिशालं वक्तव्यम्। द्विशालमन्येषु यमलेषु। यमलर्क्षेषु मिथुनकन्यामीनेष्वेवस्थिते जीवे बलोपेते द्विशालं गृहं वक्तव्यम् ।।८।।

उच्च (कर्क) राशिस्थ बृहस्पति दशवें स्थान में हो तो सूतिका का घर ऊपरी स्थान पर अर्थात् दूसरे, तीसरे, चौथे आदि मञ्जिल पर जन्म समझना । और बलवान् बृहस्पति यदि धनुराशि में हो तो सूतिकागृह तीन बरामदे से, अन्य द्विस्वभाव (मिथुन, कन्या, मीन) में हो तो बरामदे से युक्त घर समझना चाहिये।।८।।

सूतिका की शय्या का ज्ञान—

षट्त्रिनवान्त्याः पादाः खट्वाङ्गान्यन्तरालभवनानि ।
विनतत्वं यमलर्क्षैः क्रूरैस्तत्तुल्य उपघातः ।।९।।

षट्त्रिनवेति। खट्वाङ्गस्वरूपज्ञानमाह—लग्नात्षट्तृतीयनवमद्वादश-राशयः खट्वायाः पादा वक्तव्याः। एतदुक्तं भवति। येन लग्नेन प्रसवस्तदुक्तायां दिशि शय्यायाः शिरः। लग्नात् द्वादशतृतीयौ पूर्वपादौ। तत्रापि तृतीयो दक्षिणः द्वादशो वामः। षट्नवमौ पश्चिमौ तत्रापि षष्ठो दक्षिणः नवमौ वामः। खट्वाङ्गान्यन्तरालभवनानि। लग्नं द्वितीयं शीर्षे, चतुर्थ पञ्चमं दक्षिणाङ्गे, सप्ताष्टौ पादभागे, दशमैकादशौ वामाङ्गे। अस्य प्रयोजनं विनतत्वमित्यादि। यस्मिन् खट्वाङ्गे यमलौ द्विःस्वभावराशिर्भवति तस्मिन् भागे विनतत्वं नम्रत्वं वाच्यम्। यस्मिन् खट्वाङ्गे् क्रूरग्रहो भवति तस्मिन्नङ्गे ग्रहतुल्य उपघातो वक्तव्यः। यत्रार्को भवति तदङ्गमदृढं यत्र भौमस्तद्दग्धं यत्र शनैश्चरस्त-ज्जीर्णमिति। अत्रापि यमलर्क्षे सौम्यग्रहः स्वामियुक्तोऽप्यविनतत्वं पापग्रहोऽपि स्वोच्चत्रिकोणस्थो नोपघातः ।।९।।

लग्न से ६।३।९।१२ राशियाँ सूतिका की खटिया के चारों पावे समझना और इन चारों के मध्य क्रम से दो-दो राशियाँ खटिया के अन्य अंग (चारों पाटी) समझना । इस प्रकार जहाँ द्विस्वभावराशि पड़े वहाँ के स्थान में नम्रता (झुकाव, टेढ़ा-मेढ़ा) और जिस स्थान की राशि पापग्रह से युक्त हो वहाँ का स्थान उपघात युक्त समझना ।। ९ ।।

नालवेष्टित जन्म-ज्ञान

छागे सिंहे वृषे लग्ने तत्स्थे सौरेऽथवा कुजे ।
राश्यंशसद्दशे गात्रे जायते नालवेष्टितः ।।१०।।

मेष, वृष या सिंह लग्न हो, लग्न में शनि या मंगल हो, लग्न के नवांश सम्बन्धी राशि कालपुरुष के जिस अंग में हो, जातक उस अंग में नाल से वेष्टित होता है ।। १० ।।

सूतिका के शरीर और घर में द्रव्य-ज्ञान

ज्ञेयानि ताम्रणिहेमशुक्तिरौप्याणि मौक्तिकं लोहम् ।
अर्काद्यैबलवद्भिः स्वस्थाने हेम जीवेऽपि ।।११।।

ज्ञेयानिति। सूतिकागृहे द्रव्यज्ञानार्थमाह–सर्वग्रहेभ्योऽर्के बलवति सूतिकागृहे ताम्रं वक्तव्यम्। चन्द्रे बलवति मणयः, भौमे सुवर्णं, बुधे शुक्तिरिति कांस्यादि, बृहस्पतौ रौप्यं, शुक्रे मुक्ताफलानि, शनैश्चरे लोहम्। स्वस्थाने हेम जीवेऽपि इति। धनुर्धरमीनयोरन्यतरराशिव्यवस्थिते जीवे सर्वग्रहेभ्यो बलवति रौप्यं न वक्तव्यं सुवर्णं वक्तव्यमिति ।।११।।

जन्मसमय में यदि सूर्य बली हो तो ताम्र, चन्द्रमा बली हो तो मणि, भौम बली हो तो सुवर्ण, बुध बली हो तो काँसा-पीतल, गुरु बली हो तो चाँदी, शुक्र बली हो तो मोती और शनि बली हो तो लोहा सूतिकागृह में एवं सूतिका के शरीर पर धारण किया समझना चाहिये । यदि अधिक ग्रह बली हों तो ताम्र, मणि, सुवर्णादि अधिक द्रव्य समझें । बृहस्पति यदि धनु या मीनराशि का हो तो सुवर्ण भी समझना चाहिये ।। ११ ।।

सूतिकागृह में उपसूतिका का ज्ञान

शशिलग्नान्तरसंस्थग्रहतुल्याश्चोपसूतिका ज्ञेयाः ।
उदगर्धेऽभ्यन्तरगा बाह्याश्चक्रस्य दृश्येऽर्धे ।।१२।।

शशिलग्नेति। उपसूतिकाज्ञानमाह—लग्नादारभ्य चन्द्रमा यस्मिन् राशौ व्यवस्थितस्तदन्तरे यावन्तो ग्रहा व्यवस्थितास्तावत्संख्या उपसूतिका वक्तव्याः। वक्ष्यमाणायुर्दायाध्यायात् तासां द्वित्रिगुणत्वादि वक्तव्यम्। वक्ष्यमाण-वर्गोत्तमस्वराशिद्रेष्काणनवांशे द्विगुणं वक्रोच्चयोस्त्रिगुणितं द्वित्रिगुणित्वे सकृत् त्रिगुणमिति सूतिकानामुपसूतिकानां ग्रहरूपजातिवयोवर्णरूपादयो वक्तव्याः। उदगर्ध इत्यादि उत्तरदिग्व्यवस्थितमुदगर्धम् अदृश्यमित्यर्थः। तस्मिन्नदृश्येऽर्धे लग्नचन्द्रान्तरगतानां मध्ये यावन्तो ग्रहा व्यवस्थितास्तावन्त्य उपसूतिका आगारे एव वक्तव्याः। चन्द्रलग्नान्तरगतानां ग्रहाणां मध्ये यावन्तो ग्रहा दृश्ये चक्रस्यार्द्धे व्यवस्थितास्तावन्त्य उपसूतिकाः सूतिकागाराद्बहिर्वक्तव्याः ।।१२।।

लग्न और चन्द्रमा के मध्य में जितने ग्रह हों उतनी उपसूतिकाएँ समझनी चाहिये । उन उपसूतिकाओं में भी जितने ग्रह अदृश्य चक्रार्ध (लग्न के भोग्यांश से आरम्भ कर सप्तम के भुक्तांश तक ६ राशि) में हों उतनी घर के अन्दर और जितने ग्रह दृश्य चक्रार्ध (सप्तम के भोग्यांश से लेकर लग्न के भुक्तांश तक ६ राशि) में हों उतनी घर के बाहर में उपसूतिकाएँ समझें । इसका सूक्ष्मविचार आयुर्दायाध्याय में किया गया है ।। १२ ।।

इस प्रकार भारती-हिन्दीटीकासहित लघुजातक में
सूतिकाध्याय समाप्त ।। ६ ।।

अथारिष्टाध्यायः ।। ७ ।।

अरिष्टयोग—

षष्ठेऽष्टमेऽपि चन्द्रः सद्यो मरणाय पापसन्दृष्टः ।
अष्टाभिः शुभदृष्टो वर्षैर्मिश्रैस्तदर्धेन ।।१ ।।

षष्ठेऽष्टमेऽपीति। अथारिष्टाध्यायं व्याख्यास्यामः। तत्रारिष्टयोगमाह—यस्य जन्मलग्नात् षष्ठे स्थाने यदि चन्द्रमा भवति अथवाऽष्टमे। सौम्यग्रहैरदृश्यमानः पापग्रहैर्दृश्यते तदा जातस्य सद्यो मरणं वक्तव्यम्। अथवा षष्ठाष्टमे चन्द्रमाः पापग्रहेण न दृश्यते सौम्येन दृश्यते तदा जातस्य वर्षाष्टमे मरणं वक्तव्यम्। अथवा षष्ठाष्टमे चन्द्रमाः सौम्येन दृश्यते पापेन च दृश्यते तदा जातस्य वर्षचतुष्टयेन मरणं वक्तव्यम्। अथ षष्ठाष्टममगश्चन्द्रमाः न कश्चिद् दृश्यते तदा योग एव न भवति ।।१ ।।

जन्म लग्न से चन्द्रमा ६।८ स्थान में (केवल) पापग्रह से दृष्ट हो तो शीघ्र मरण कहना । यदि मात्र शुभग्रह से दृष्ट हो तो ८ वर्ष तक एवं यदि पाप-शुभ दोनों से दृष्ट हो तो उसका आधा (अर्थात् ४ वर्ष तक) जातक की स्थिति (जीवन) समझना ।। १ ।।

शशिवत्सौम्याः पापैर्वक्रिभिरवलोकिता न शुभदृष्टाः ।
मासेन मरणदाः स्युः पापजितो लग्नपश्चास्ते ।।२ ।।

शशिवत्सौम्या इति। अरिष्टान्तरमाह—शशिना तुल्यः शशिवत्सौम्या एतदुवतं भवति लग्नात् षष्ठे स्थाने अष्टमेऽपि वा कश्चिद् सौम्यग्रहो भवति स च पापग्रहेण वक्रगतेन दृश्यते वक्रग्रहणमवशेषबलोपरक्षणार्थम्। एवं जाते बलिना ग्रहेण पापेन दृश्यते न चाप्येकेन सौम्यग्रहेण दृश्यते तदा जातस्य मासेन मरणं वक्तव्यम्। पापजितो लग्नपश्चास्त इति यस्य जन्मलग्नाधिपतिः पापसमागतो पापग्रहगेहे दृश्यते वा जिताः स लग्नात् सप्तमे यदि भवति तदा मासेन मरणं वक्तव्यम्। जितलक्षण- मुच्यते—'दक्षिणदिक्स्थः पुरुषो वेपथुरप्राप्य सन्निवृत्तोऽणुः। अधिरूढो विकृतो निःप्रभोऽविर्वणश्च यः स जितः' इति ।।२ ।।

यदि चन्द्रमा के समान ही कोई शुभग्रह जन्मलग्न से छठे या आठवें भाव में स्थित हो और वक्री (बलवान्) पापग्रह से दृष्ट और किसी शुभग्रह की दृष्टि से रहित हो तो १ मास में यदि पापग्रह से पराजित लग्नेश सप्तम भाव में हो तो भी १ मास तक जातक का जीवन समझना ।। २ ।।

राश्यन्तस्थैः पापैः सन्ध्यायां हिममयूखहोरायाम् ।
मृत्युः प्रत्येकस्थैः केन्द्रेषु शशाङ्कपापैश्च ।।३।।

राश्यन्तस्थैरिति। अरिष्टान्तरमाह—यत्र यत्र राशौ पापग्रहो व्यवस्थितः स नवमे नवांशके स्थित एवं सर्वे ग्रहाः पापा यदा राश्यन्तस्था भवन्ति सन्ध्याकालश्च भवति तदा जातस्य मृत्युर्भवति। सन्ध्यालक्षणम्—

अर्धास्तसमयात् सन्ध्या व्यक्तीभूता न तारका यावत् ।
तेजः परिहानिमुखाद्भानोरर्धोदयं यावत् ।। इति ।।

तस्मिन्सन्ध्याकाल इति प्रत्येकस्थैः केन्द्रेषु शशाङ्कपापश्चेति चतुर्षु केन्द्रेषु यथा तथाऽर्कचन्द्रभौमशनैश्चराणामन्यतमो भवति तदा जातस्य मृत्युर्वक्तव्यः ।।३।।

सन्ध्याकाल के समय लग्न में चन्द्रमा की होरा हो और समस्त पापग्रह राशि के अन्तिम नवांश में हो अथवा यदि चारों केन्द्र (१।४।७।१०) में प्रत्येक में चन्द्रमा और पापग्रह (सूर्य-मंगल-शनि) हो तो मरणप्रद समझना।।३।।

चक्रप्राक्पश्चार्द्धे पापशुभैः कीटभोदये मृत्युः ।
निधनचतुष्टयगैर्वा क्रूरैः क्षीणे शशिन्युदये ।।४।।

चक्रप्रागिति। अरिष्टयोगद्वयमाह—यावानंशो लग्नस्याऽभ्युदितस्तावत् संख्याकाद्दशमराशेरंशादारभ्य यावच्चतुर्थस्यैव राशेस्तावत्संख्यैर्वांशस्तावच्च-क्रस्य पूर्वार्द्धं द्वितीयमपरार्धं ज्ञेयम्। यत्र यदा चक्रस्य पूर्वार्द्धे सर्वे पापा व्यवस्थिता भवन्ति वृश्चिक-कीटयोरन्यतमं च लग्नं भवति तदा जातस्य मृत्युर्भवति। निधनचतुष्टयेत्यादि। अष्टमकेन्द्रगैर्यथा तदा पापैः क्षीणे चन्द्रमसि लग्ने सति यस्य जन्म भवति स म्रियते ।।४।।

कीट (कर्क या वृश्चिक) लग्न हो और चक्र से पूर्वार्ध (दशम भावराश्यादि पर्यन्त) में पापग्रह और चक्र के परार्ध–(चतुर्थभावराश्यादि से दशमभावराश्यादि पर्यन्त) में शुभग्रह हों तो जातक की मृत्यु कहना । एवं यदि सभी पापग्रह अष्टम और केन्द्र (१।४।७।१०) में स्थित हों और क्षीण चन्द्रमा लग्न में बैठा हो तो भी मरणकारक होता है ।। ४ ।।

सप्ताष्टान्त्योदयगे शशिनि सपापे शुभेक्षणवियुक्ते ।
न च कण्टकेऽस्ति कश्चिच्छुभस्तदा मृत्युरादेश्यः ।।५।।

सप्ताष्टेति। अरिष्टान्तरमाह—सप्ताष्टद्वादशानामेकतमेऽपि स्थाने लग्ने वा चन्द्रः पापग्रहयुतो भवति। शुभग्रहेण बुधगुरुशुक्राणामेकतमेनापि न दृश्यते न च युक्तो न च केन्द्रेषु शुभग्रहः कश्चिदेवंविधे योगे जातस्य मरणमादेश्यम् ।।५।।

पापग्रह से युक्त चन्द्रमा ७।८।१२।१ इन भवनों में स्थित हो, केन्द्र में कोई भी शुभग्रह न हो तथा अन्य स्थानीय (केन्द्र से भिन्न स्थानीय) शुभग्रह से देखा भी न जाता हो तो ऐसे योग में जातक की मृत्यु कहना ।। ५ ।।

चतुरस्त्रे सप्तमगः पापन्तस्थः शशी मरणदाता ।
उदयगतो वा चन्द्रः सप्तमराशिस्थितैः पापैः ।।६।।

चतुरस्त्र इति। अरिष्टयोगद्वयमाह—लग्नाच्चन्द्रमाश्चतुर्थे स्थानेऽष्टमे वा सप्तमे वा स्थितस्तत्र च पापग्रहयोर्मध्यगतस्तदा जातस्य मरणं करोति इत्यर्थः। उदयगतो वेत्यादि। लग्ने चन्द्रमा भवति सप्तमस्थाः पापाश्च भवन्ति तदा जातस्य मृत्युर्वक्तव्यः ।।६।।

यदि दो पाप ग्रहों के मध्य में चन्द्रमा लग्न से ४।८।७ स्थान में हो तो मृत्युकारक होता है या लग्न में चन्द्रमा और सप्तम स्थान में पापग्रह हो तो भी मृत्युकारक होता है अर्थात् जातक की मृत्यु होती है ।। ६ ।।

क्षीणेन्दौ द्वादशगे लग्नाष्टमराशिसंस्थितैः पापैः ।
सौम्यरहिते च केन्द्रे सद्यो मृत्युर्विनिर्देश्यः ।।७।।

क्षीणेन्दाविति। अरिष्टान्तरमाह–यस्य जन्मलग्नाद् द्वादशस्थाने क्षीणश्चन्द्रो भवति लग्नाष्टमराशौ यदि पापा व्यवस्थिता: सौम्यरहितानि केन्द्राणि भवन्ति तदा जातस्य सद्यो मरणं वक्तव्यम् ।।७।।

केन्द्र शुभग्रह से रहित हो क्षीणचन्द्रमा द्वादशभाव में और पापग्रह लग्न, अष्टम स्थान में हो तो शीघ्र ही मृत्यु कहना चाहिये ।। ७ ।।

सोपप्लवे शशाङ्के सक्रूरे लग्नगे कुजेऽष्टमगे ।
मृत्युर्मात्रा सार्द्धं चन्द्रवदर्के च शस्त्रेण ।।८।।

सोपप्लव इति। अरिष्टान्तरमाह—सह उपप्लवेन वर्तते सोपप्लव: चन्द्रग्रहणकाले लग्नगते चन्द्रमसि तत्रैव शनैश्चरे पापे व्यवस्थिते लग्नादष्टमगते च भौमे जात: शिशुर्म्रियते मात्रा सहैव। चन्द्रवदर्के सशस्त्रेणेति। चन्द्रेण तुल्यं चन्द्रवत् एतदुवतं भवति । आदित्यग्रहणकाले अर्को लग्नगतो भवति तत्रैव शनैश्चर: पापग्रह: अष्टमो भौम: तदा जातस्य तन्मातुश्च शस्त्रतो मृत्युर्भवति।।८।।

यदि राहु से ग्रस्त चन्द्रमा पापग्रह के साथ लग्न में हो और अष्टमभाव में मंगल हो तो माता के साथ जातक की मृत्यु और यदि चन्द्रमा के समान सूर्य हो अर्थात् केतु से ग्रस्त सूर्य पापग्रह के साथ लग्न में हो और अष्टमभाव में मंगल हो तो माता के सहित जातक की मृत्यु शस्त्र से होती है ।। ८ ।।

लग्न-द्वादश-नवमाऽष्टमसंस्थैश्चन्द्र-सौरि-सूर्याऽऽरैः ।
जातस्य भवति मरणं यदि न बलयुतः पतिर्वचसाम् ।।९।।

लग्नद्वादशेति। अरिष्टान्तरमाह—यस्य जग्मनि लग्नगतश्चन्द्रमा भवति द्वादशस्थ: शनैश्चर: नवमोऽर्क अष्टमो भौमो भवति जीवश्च बलवान्न भवति तदा जातस्य मरणं भवति ।।९।।

यदि लग्न में चन्द्रमा, द्वादशभाव में शनि, नवम में सूर्य और अष्टम में मंगल हो तथा बृहस्पति बलरहित हो तो जातक की मृत्यु होती है । बलयुक्त बृहस्पति के रहने पर मृत्यु नहीं होती ।। ९ ।।

सुतमदननवान्त्यलग्नरन्ध्रेष्वशुभयुतो मरणाय शीतरश्मिः ।
भृगुसुतशशिपुत्रदेवपूज्यैर्यदि बलिभिर्न युतोऽवलोकितो वा ।।१०।।

सुतमदनेति। अरिष्टान्तरमाह—लग्नात्पञ्चमसप्तमनवमद्वादशाष्टम-स्थानानामन्यतमस्थानस्थः लग्नस्थो वा चन्द्रो भवति स च पापग्रहयुक्तो भवति शुक्रबुधबृहस्पतीनामन्यतमेन न युक्तो न दृश्यते बलिना वा तदा जातस्य मरणाय भवति ।।१०।।

यदि पापग्रह से युत चन्द्रमा ५।७।९।१२।१।८ भावों में हो और बलवान् शुक्र, बुध, गुरु से युत अथवा दृष्ट न हो तो जातक की मृत्यु नहीं होती है।।१०।।

योगे स्थानं गतवति बलिनश्चन्द्रे स्वं वा तनुगृहमथवा ।
पापैर्दृष्टे बलवति मरणं वर्षस्यान्तः किल मुनिगदितम् ।।११।।

योगे स्थानमिति। अनुक्तमरणकालानामरिष्टानां कालज्ञानमाह—यस्मिन् रिष्टयोगे जातस्य मरणकालविधिर्नोक्तस्तस्मिन् योगे जातस्य ये योगकर्तारो ग्रहास्तेषां मध्ये यो बलवान्स यस्मिन्राशौ जन्मकाले व्यवस्थितस्तत्र चारक्रमाच्चन्द्रमसि प्राप्ते जातस्य मरणं वक्तव्यम्। स्वम् आत्मीयं स्थानं वा गते चन्द्रमसि जातकाले यत्र राशौ चन्द्रमा व्यवस्थितस्तमेव राशि पुनरपि गते चन्द्रमसि तस्य मरणं वक्तव्यम्। तनुगृहं लग्नं तत्र चारक्रमात् गते चन्द्रमसि तस्य मरणं वक्तव्यम्। कदेत्युच्यते वर्षस्यान्तः संवत्सरस्यान्तरे। एतदुवतं भवति अनुक्तमरणकालमारभ्य जातो वर्षमतिक्रमतीति तत्र प्रतिमासमेवैतानि चन्द्रमस्थराशित एवावगन्तव्यानि। तद्वर्षाभ्यन्तरे तस्य कदा मरणं वक्तव्यमित्यत आह—पापैदृष्टे बलवति। दर्शितराशित्रये एकस्मिन् राशौ यदा बलवान् चन्द्रो भवति पापैश्च दृष्टो भवति तदा तस्य मरणं वक्तव्यं न केवलगतमात्र एव चन्द्रे।

किल मुनिगदितं किलेत्यागमसूचना। मुनिगदितमरिष्टलक्षणमित्यागमपारम्पर्येण श्रूयत इति ।।११।।

जिन अरिष्टयोगों में मृत्यु का समय नहीं बताया गया है, उन योगों में निश्चित रूप से मारक (मरण) को कहते हैं–जन्मसमय सबसे बलवान् जो ग्रह हो उस ग्रह के स्थान में या अपने स्थान में अर्थात् जन्मसमय जिस स्थान में चन्द्रमा हो उस स्थान में या लग्न राशि में बलवान् एवं पापग्रह से दृष्ट चन्द्रमा प्रवेश करता है, उसी समय जातक की मृत्यु निश्चित रूप से एक वर्ष के अन्दर ही होती है–ऐसा मुनियों ने निर्देश दिया है ।। ११ ।।

इसी प्रकार भारती-हिन्दीटीकासहित लघुजातक में

अरिष्टाध्याय समाप्त ।। ७ ।।

अथारिष्टभङ्गाध्यायः (८)

सर्वानिमानतिबलः स्फुरदंशुजालो
लग्नस्थितः प्रशमयेत् सुरराजमन्त्री ।
एको बहूनि दुरितानि सुदुस्तराणि
भक्त्या प्रयुक्त इव शूलधरप्रणामः ।।१।।

बलवान् देदीप्यमान किरणों से युक्त मात्र बृहस्पति लग्न में हो तो सम्पूर्ण अरिष्टों का नाश कर देता है । जैसे भक्तिपूर्वक शिवजी के प्रति किया गया एक प्रणाम सभी पापों को दूर (नाश) कर देता है ।। १ ।।

लग्नाधिपोऽतिबलवानशुभैरदृष्टः
केन्द्रस्थितैः शुभखगैरवलोवयमानः ।
मृत्युं विधूय विदधाति सुदीर्घमायुः
सार्द्ध गुणैर्बहुभिरुर्जितया च लक्ष्म्या ।।२।।

बलवान् लग्नेश पापग्रहों से अदृष्ट एवं केन्द्र-स्थित शुभ ग्रहों से दृष्ट हो तो सम्पूर्ण अरिष्टों को नाश कर सभी प्रकार के गुण और उत्तरोत्तर वृद्धिकर सम्पत्ति सहित दीर्घायु प्रदान करता है ।। २ ।।

लग्नादष्टमवर्त्यपि बुधगुरुभार्गवद्दकाणगश्चन्द्रः।
मृत्युं प्राप्तमपि नरं परिरक्षत्येव निर्व्याजम् ।।३।।

जन्मलग्न से अष्टमस्थान में रहने पर भी चन्द्रमा यदि बुध, गुरु या शुक्र के द्रेष्काण में हो तो अनेक अरिष्टों के रहने पर भी जातक की सभी प्रकार से रक्षा करता है ।। ३ ।।

चन्द्रः सम्पूर्णतनुः सौम्यर्क्षगतः स्थितः शुभस्यान्तः।
प्रकरोति रिष्टभङ्गं विशेषतः शुक्रसन्दृष्टः ।।४।।

पूर्णचन्द्रमा यदि शुभग्रह की राशि में स्थित हो और दो शुभ ग्रहों के मध्य में हो तो अरिष्ट का नाश करता है और यदि वही चन्द्रमा शुक्र से दृष्ट हो तो विशेष रूप से अरिष्ट को दूर करता है ।। ४ ।।

बुधभार्गवजीवानामेकतमः केन्द्रमागतो बलवान् ।
क्रूरसहायो यद्यपि सद्यो रिष्टस्य भङ्गाय ।।५।।

बुध, शुक्र और बृहस्पति इनमें से कोई भी एक ग्रह बलवान् होकर केन्द्र में स्थित हो और अशुभ ग्रह से दृष्ट-युत न हो तो शीघ्र ही अरिष्ट का नाश करना है ।। ५ ।।

रिपुभवनगतोऽपि शशीगुरुसितचन्द्रात्मजदृकाणस्थः ।
गरुड इव भोगिदष्टं परिरक्षत्येव निर्व्याजम् ।।६।।

लग्न से षष्ठस्थ चन्द्रमा यदि बुध, गुरु या शुक्र के द्रेष्काण में हो तो जातक की रक्षा करता है । जैसे सर्प से भयभीत की गरुड़ रक्षा करता है।।६।।

सौम्यद्वयमध्यगतः सम्पूर्णः स्निग्धमण्डलः शशभृत् ।
निःशेषारिष्टहन्ता भुजङ्गलोकस्य गरुड इव ।।७।।

शुभग्रहों के मध्य में यदि पूर्णचन्द्रमा हो तो सम्पूर्ण अरिष्टों का नाश करता है । जैसे-सर्प समूहों का नाश गरुड़ करता है ।। ७ ।।

शशभृति पूर्णशरीरे शुक्ले पक्षे निशाभवे काले ।
रिपुनिधनस्थे रिष्टं प्रभवति नैवात्र जातस्य ।।८।।

यदि किसी का जन्म शुक्लपक्ष की रात्रि में हो और पूर्ण चन्द्रमा लग्न से षष्ठ अथवा अष्टमस्थान में स्थित हो तो भी जातक को अरिष्ट नहीं होता है।।८।।

प्रस्फुरितकिरणजाले स्निग्धामलमण्डले बलोपेते ।
सुरमन्त्रिणि केन्द्रगते सर्वारिष्टं शमं याति ।।९।।

यदि जन्मसमय में बलवान् बृहस्पति केन्द्र में हो तो सम्पूर्ण अरिष्टों का नाश करता है, अर्थात् प्राप्त अरिष्ट भी समाप्त हो जाता है ।। ९ ।।

सौम्यभवनोपयाताः सौम्यांशकगाः सौम्यदृकाणस्थाः ।
गुरुचन्द्रकाव्यशशिजाः सर्वेऽरिष्टस्य हन्तारः ।।१०।।

बृहस्पति, चन्द्रमा, शुक्र और बुध यदि शुभराशि में स्थित हों और यह शुभग्रह राशि के नवांश तथा द्रेष्काण में हों तो सम्पूर्ण अरिष्टों को दूर करते हैं।।१०।।

चन्द्राध्यासितराशेरधिपः केन्द्रे शुभग्रहो वाऽपि ।
प्रशमयति रिष्टयोगं पापानि यथा हरिस्मरणम् ।।११।।

एक भी शुभ ग्रह या चन्द्र से युक्त राशिस्वामी केन्द्र में हो तो अरिष्ट योग का नाश करता है । जैसे विष्णु भगवान् का स्मरण पापों का नाश करता है।।११।।

पापाः यदि शुभवर्गे सौम्यैर्दृष्टाः शुभेशवर्गस्थैः ।
निघ्नन्ति तदा रिष्टं पतिं विरक्ता यथा युवतिः ।।१२।।

यदि अरिष्टकारक पापग्रह शुभग्रह के वर्ग (षड्वर्ग) में हों और शुभ वर्ग में स्थित शुभ ग्रह से दृष्ट हों तो अरिष्ट का नाश करता है । जैसे पर-पुरुष में आसक्त स्त्री अपने पति का नाश कर देती है ।। १२ ।।

राहुस्त्रिषष्ठालाभे लग्नात् सौम्यैर्निरीक्षितः सद्यः ।
नाशयति सर्वदुरितं मारुत इव तूलसङ्घातम् ।।१३।।

लग्न से (जन्म लग्न से) ३।६।११ स्थान में यदि राहु हो और शुभग्रह से दृष्ट हो तो यह सम्पूर्ण अरिष्टों को उसी प्रकार नष्ट करता है जैसे रुई के समूह को अग्नि नष्ट करती है ।। १३ ।।

शीर्षोदयेषु राशिषु सर्वे गगनाधिवासिनः सूतौ ।
प्रकृतिस्थश्चारिष्टं विलीयते घृतमिवाग्निस्थम् ।।१४।।

जन्मसमय यदि सम्पूर्ण ग्रह शीर्षोदय राशि में हो तो ग्रहजन्य अरिष्ट का नाश उसी तरह होता है, जैसे अग्नि घृत का नाश कर देती है ।। १४ ।।

तत्काले यदि विजयी शुभग्रहः शुभनिरीक्षितोऽवश्यम् ।
नाशयति सर्वारिष्टं मारुत इव पादपान् प्रबलः ।।१५।।

जन्मसमय में एक भी ग्रह यदि ग्रहों के साथ युद्ध में विजयी हो और शुभग्रह से दृष्ट हो तो सम्पूर्ण अरिष्टों का नाश करता है । जैसे प्रबल वायु लता-पादपों का नाश कर देता है ।। १५ ।।

पक्षे सिते भवति जन्म यदि क्षपायां
कृष्णे तथाऽहनि शुभाशुभऽद्दश्यमानः ।
तं चन्द्रमा रिपुविनाशगतोऽपि यत्ना-
दापत्सु रक्षति पितेव शिशुं न हन्ति ।।१६।।

यदि किसी का जन्म शुक्लपक्ष की रात्रि में हो और चन्द्रमा शुभग्रह से दृष्ट हो अथवा यदि किसी का जन्म कृष्णपक्ष के दिन में हो और चन्द्रमा पापग्रह से दृष्ट हो तो षष्ठस्थ. अष्टमस्थ (६।८) होने पर भी चन्द्रमा जातक की पिता के समान रक्षा करता है अर्थात् अरिष्ट का नाश करता है तथा मरने नहीं देता है।।१६।।

इस प्रकार भारती-हिन्दीटीकासहित लघुजातक में
अरिष्टभङ्गाध्याय समाप्त ।। ८ ।।

अथाऽऽयुर्दायाध्यायः ।। ९ ।।

ग्रहायुर्दय—

राश्यंशकला गुणिता द्वादशनवभिर्ग्रहस्य भगणेभ्यः ।
द्वादशहृतावशेषेऽब्दमासदिननाडिका क्रमशः ।।१।।

राश्यंशकलेति। अथायुर्दायाध्यायं व्याख्यास्यामस्तत्र पुरुषजन्मकाले स्फुटगणितेन विशेषकर्मणा स्फुटाग्रहास्तात्कालिकाश्च कर्तव्याः लग्नं च तात्कालिकं कर्तव्यं तात्कालिकस्यैवार्कश्यायुर्दायः कर्तव्यः। तत्करणोपायमाह—तात्कालिकग्रहस्य राश्यंशकलविकलाः पृथक् द्वादशभिर्गुणितास्ततो नवभिर्गुणिता एवमष्टाधिकशतेन, गुणिताः कार्याः विलिप्तानां मध्ये व्युत्क्रमेण षष्ट्या भागमपहृत्यावाप्तं कलासु योज्यं यदवशिष्टं पलानि। कलाभ्यो षष्ट्या भागमपहृत्यावाप्तं अंशेषु योज्यं ज्ञेयं घट्यः ततो भागेषु त्रिंशता भागमपहृत्यावाप्तं राशिषु योज्यं शेषं दिवसाः। ततो राशिषु द्वादशभिर्भागमपहृत्यावाप्तं ते भगणाः शेषं मासाः। भगणानामपि द्वादशभागमपहृत्यावाप्तं त्याज्यं शेषाणि वर्षाणि। एवमब्दमासदिननाडिकाः क्रमश इति। उदाहरणम् तद्यथा स्फुटग्रहः ३।२९°।५९'।५९'' अस्य 'राश्यंशकलाविकला द्वादशभिर्गुणिता जातं ३६। ३४८। ७०८। ७०८ पुनरपि नवभिर्गुणिता ३२४। ३१३२। ६३७२। ६३७२ ततो विलिप्तिकासु एतासु षष्ट्या भागमपहृत्यावाप्तं १०६ तत्कलासु योजितं ६४७८ शेषं १२ पलानि ताभ्यो षष्टिभागमपहृत्यावाप्तं १०७ अंशेषु योजितं ३२३९ शेषम् ८ एता घट्यः। एषु त्रिंशता लब्धं १०७ तद्राशिषु युक्तं ४३१ शेषं २९ एते दिवसाः, पुनः राशौ द्वादशभागेन लब्धं ३५ एते भगणाः शेषं ११ एते मासाः भगणेभ्यो द्वादशभागेन लब्धं २ निरुपयोगत्वात्त्याज्यं शेषम् ११ वर्षाणि। वर्षमासदिनघटीपलादेरधोऽधः स्थापना कार्या। एवं सर्वेषां ग्रहाणां करणीयम्। एवं कृते आयुर्दायो भवति ।।१।।

जिस ग्रह का आयुर्दाय जानना हो उनके तात्कालिक स्पष्ट राशि-अंश-कला-विकला को १२ और ९ से अर्थात् १०८ से गुणा कर सवर्णन करके अर्थात् विकला में ६० से भाग देकर लब्धि को कला में जोड़े फिर उसमें ६० से भाग देकर लब्धि को अंश में, ३० फिर अंश में ३० से भाग देकर लब्धि

को राशि में और राशि में १२ से भाग देकर लब्धि को भगण और यदि भगण १२ से अधिक हो तो १२ से तष्टित करके शेष तुल्य वर्ष और राश्यादि शेष तुल्य मासादिक (मास दिन घटी-पल) उस ग्रह की आयु होती है ।। १ ।।

उदाहरण–स्पष्ट सूर्य राश्यादि ०।२०।१०।५ है । इनको १०८ से गुणा करने से राश्यादि ०।२१६०।१०८०।५४० इसको सवर्णन करने से भगणादि ६।०।१८।९।० यहाँ भगण १२ से कम है अत: यही सूर्य की वर्षादि आयु हुई । अन्य ग्रहों की भी आयु इसी प्रकार जानना ।

लग्नायुर्दाय—

होरादायोऽप्येवं बलयुक्ताऽन्यानि राशितुल्यानि ।
वर्षाणि सम्प्रयच्छत्यनुपाताच्चांशकादिफलम् ।।२।।

होरादाय इति। लग्नायुर्दायमाह—होरा लग्नं तद्दाय: यथा ग्रहस्यायुर्दाय: कृतस्तथा लग्नस्य कार्य:। सा होरा यदि बलयुक्ता तदाऽन्यानि वर्षाणि राशितुल्यानि प्रयच्छन्ति। लग्नस्य यावन्तो भुक्तराशय: तत्समानानि वर्षाणि ददाति तानि आयुर्दाये योज्यानि अनुपाताच्चांशकादिफलम् अनुपातस्त्रैराशिकगणितमभिधीयते। लग्नस्य राशीनपास्य भागादिलिप्तापिण्ड: कार्य: तल्लिप्तापिण्डं द्वादशशभि: सङ्गुण्य अष्टादशभि: शतै (१८००) र्विभज्यावाप्तं मासा:, मासशेषं त्रिंशता ३० सङ्गुण्य अष्टादशशतविभागेन लब्धं दिवसा:। दिनशेषं षष्टिगुणितं कृत्वा अष्टादशशतैर्लब्धं घटिका शेषं षष्टिगुणं कार्यम् अष्टादशशतैर्लब्धं पलानि। एवमनुपातेन लब्धो मासादिर्लग्नस्यायुर्दायो ज्ञेय: ।।२।।

इसी प्रकार लग्न का भी आयुसाधन करे । यदि लग्न बलवान् स्वस्वामी या बुध, गुरु से युत-दृष्ट हो तो लग्नभुक्त राश्यादितुल्य (वर्षादि) अर्थात् राशि तुल्य वर्ष और अंशों से अनुपात द्वारा मासादि को) उक्त आयु में जोड़ने से लग्न की स्पष्ट आयु होती है ।। २ ।।

विशेष–अनुपात इस प्रकार है कि ३० अंश में १२ मास अर्थात् १ अंश में १२ दिन तो लग्न के भुक्त अंशादि में क्या ? ।

वर्गोत्तमादि में विशेष—

वर्गोत्तमस्वराशिद्रेष्काणनवांशके सकृद्विगुणम् ।
वक्रोच्चयोस्त्रिगुणितं द्वित्रिगुणत्वे सकृत् त्रिगुणम् ।।३।।

वर्गोत्तमेति। ग्रहायुर्दायविशेषमाह—यो ग्रहो वर्गोत्तमस्थित: तदायुर्दायो द्विगुण: कार्य:। य: स्वराशौ भवति स्वद्रेष्काणं स्वनवांशके भवति तद्दत्तायुर्दायो द्विगुण: कार्य:। यस्तु वक्री भवति तद्दत्तायुर्दायस्त्रिगुण: यस्तूच्चराशौ भवति तस्यापि त्रिगुण: कार्यो द्वित्रिगुणत्वे सकृत्त्रिगुण सकृदेकवारं त्रिगुणं वक्तव्यम्।।३।।

जो ग्रह वर्गोत्तमांश, स्वराशि, स्वद्रेष्काण अथवा स्वनवांशमें हो तो उक्त विधि से साधित आयु को द्विगुणित और यदि ग्रह वक्रगति या अपने उच्च में हो तो त्रिगुणित एवं यदि दोनों योग (द्विगुणत्व-त्रिगुणत्व) प्राप्त हो तो केवल एक ही बार त्रिगुणित कर देना चाहिए ।। ३ ।।

उदाहरण–यथा स्पष्टसूर्य ०।२०।१०।५ अपने उच्च में है, अत: इसकी पूर्व साधित आयु वर्षादि ६।०।१८।९।० को त्रिगुणित करने से १८।१।२४।२७।० यह वर्षादि स्पष्टसूर्य की आयु हुई ।

ग्रहों की आयु में हानि—

त्र्यंशमवक्रो रिपुभे नीचेऽर्धं सूर्यलुप्तकिरणश्च ।
क्षपयति स्वायुर्दायान्नास्तं यातौ रविजशुक्रौ ।।४।।

त्र्यंशमवक्र इति। शत्रुक्षेत्रस्थितग्रहायुर्दायहानिमाह—भौमं वर्जयित्वा शत्रुराशिव्यवस्थितो ग्रह: स्वदत्तायुषस्त्रिभागमपहरति। यश्च स्वनीचराशौ भवति स स्वदत्तायुषोऽर्धमपहरति। अस्तगतो ग्रहोऽर्ध हरति। शुक्रशनैश्चरौ अस्तंगतावपि नार्धं हरत: ।।४।।

यदि मार्गी ग्रह अपने शत्रु की राशि में हो तो उक्तविधि से साधित आयु का तृतीयांश घट जाता है और यदि अपने नीच या सूर्य सान्निध्य से अस्त हो तो आधा परञ्व शनि और शुक्र यदि अस्त भी हो तो उसकी आयु की हानि नहीं होती ।। ४ ।।

विशेष–कोई 'वक्र' शब्द से मङ्गल का ग्रहण किये हैं, ऐसा पाठ असङ्गत है क्योंकि पूर्वश्लोक ''वक्रोच्चयोस्त्रिगुणितं" से सिद्ध हो चुका है कि वक्रीग्रह के आयुर्दाय की वृद्धि ही होती है । इसलिए अवक्र अर्थात् वक्रगति ग्रह को छोड़कर अन्य (मार्गी) ग्रह पाठ ही युक्त सङ्गत है ।

चक्रोत्तरार्धस्थित ग्रहों की आयु में हानि—

सर्वार्धत्रिचतुर्थेन्द्रियर्तुभागान् व्ययाद्धरन्त्यशुभाः ।
सन्तोऽर्धमतो वामं बलवानेकर्क्षगेष्वेकः ।।५।।

सर्वार्धेति। चक्रपातेनाप्यायुषो हानिमाह—अशुभाः पापग्रहा वामं विपरीतं सप्तमभवनं यावल्लग्नाद् द्वादशे स्थिताः ते सर्वमायुर्दायं हरन्ति। य एकादशे ते अर्धम्, ये दशमे ते त्रिभागम् ये नवमे ते चतुर्थाशं येऽष्टमे ते पञ्चमाशं, सप्तमस्थाः षड्भागमेवं हरन्ति। शुभास्तु सौम्यग्रहा लग्नाद्द्वादशस्थाः स्वायुषोऽर्धं हरन्ति, एकादशस्थाश्चतुर्भागं, दशमस्थाः षड्भागं नवमस्थाऽष्टमभागं, अष्टमस्था दशमभागं, सप्ताष्टमस्था द्वादशभागं, द्वादशैकादशदशमनवमाष्टमसप्तमेषु यावत् बहुषु ग्रहेषु एकर्क्षगेषु यो बलवान्स एव यथोक्तं स्वायुर्दायमपहरति नान्यः।।५।।

द्वादशभाव से उत्क्रम (अर्थात १२, ११, १०, ९, ८, ७ भाव पर्यन्त) में पापग्रह हो तो क्रम से गणितागत आयु का सम्पूर्ण, आधा, तृतीययांश, चतुर्मांश पञ्चमांश और षष्ठांश घट जाता है और इन्हीं स्थानों में यदि शुभग्रह हों तो पापग्रह की अपेक्षा आधा (अर्थात् सम्पूर्ण के स्थान में आधा, आधे के स्थान में चतुर्थांश इत्यादि) का नाश होता है । एवं यदि उक्त स्थानों में से किसी एक ही स्थान में दो या अधिक ग्रह हों तो उनमें सब से जो बली हो केवल उसी एक ग्रह की आयु का ह्रास होता है, सब का नहीं ।। ५ ।।

इति लघुजातके के आयुर्दायाध्यायः ९ ।।

अथ दशान्तर्दशाध्याय: ।। १० ।।

दशाप्रमाण—

शोध्यक्षेपविशुद्ध: कालो यो येन जीविते दत्त: ।
स विचिन्त्या तस्य दशा स्वदशासु फलप्रदा: सर्वे ।।१।।

शोध्यक्षेपेति। अथ दशाप्रमाणमाह—प्रथमं ग्रहस्यायुर्दाय: कर्तव्य:। ततस्तस्य चक्रपातेन हानिर्या भवति सा कार्या। यत्र द्वित्रिगुणितं भवति तदपि कार्यम्। एवं कृते शोध्यक्षेपविशुद्ध: कालो भवति। शोध्यो हानि: क्षेपो गुणना तेन शुद्ध: कालो येन ग्रहेण जीविते दत्तस्तावत्कालं तस्य ग्रहस्य सम्बन्धिनी दशा भवेदेवं विचिन्त्य शुभाऽशुभफलं ग्रहाणां दशाजं बोध्यम् ।।१।।

उक्त आयुर्दायोक्त विधि से हानि और वृद्धि करके जिस ग्रह की जितनी स्पष्टायु वर्षादि हो, वही उस ग्रह की वर्षादि दशा कहलाती है । एवं ग्रह अपनी दशा में अपने-अपने स्वभावानुसार फल देते हैं ।। १ ।।

दशाक्रम—

लग्नार्कशशाङ्कानां यो बलवांस्तद्दशा भवेत् प्रथमा ।
तत्केन्द्रपणफरापोक्लीमगतानां बलाच्छेषा: ।।२।।

लग्नार्केति। ग्रहदशाप्रमाणे क्रममाह—लग्नार्कचन्द्राणां मध्ये यो बलवांस्तस्य प्रथमा दशा भवेत्। तत: प्रथमदशापतेर्यावन्तो ग्रहा: केन्द्रस्था भवन्ति तेषां बलाधिक्येन भवेद्दशा। एवं सर्वेषां केन्द्रस्थानां कल्पयित्वा तत: पणफरस्थानामनेन क्रमेण कर्तव्या। तत: आपोक्लीमस्थानगतानां तेनैव क्रमेण दशा भवति। शेषाणां बलात् ज्ञातव्या: ।।२।।

लग्न, सूर्य और चन्द्र इन तीनों में जो अधिक बली हो—प्रथम उसी की दशा प्रारम्भ होती है । तदनन्तर उससे केन्द्रस्थानस्थित ग्रहों की, तदनन्तर पणफरस्थानस्थित ग्रहों की, पश्चात् आपोक्लिमस्थ ग्रहों की दशा बल के क्रम से होती है ।। २ ।।

ग्रहों की दशा में शुभाशुभता—

मित्रोच्चस्वगृहांशोपगतानां शोभना दशाः सर्वाः ।
स्वोच्चाभिलाषिणामपि न तु कथितविपर्ययस्थानाम् ।।३।।

मित्रोच्चेति। एवं दशापतौ ज्ञाते तद् दशाशुभाशुभज्ञानमाह—जन्मकाले यो ग्रहो मित्रक्षेत्रस्थः, यश्च स्वोच्चस्थः, स्वनवांशगतः तस्य दशा शोभना। उच्चाद् द्वादशराशौ नवमनवांशस्थ उच्चाभिलाषी तस्यापि दशा शोभना। न तु विपरीतगतानां। जन्मकाले यो ग्रहः शत्रुक्षेत्रस्थः शत्रुनवांशस्थः नीचस्थः नीचाभिलाषी तस्य दशा दुष्टा अशुभा अन्यस्थानस्थितस्य ग्रहस्य मध्या दशा भवति ।।३।।

जो ग्रह अपने मित्र, अपने उच्च, अपनी राशि, अपने नवांश में हो अथवा अपने उच्चस्थानाभिलाषी (अर्थात् मार्गी ग्रह उच्च स्थान से द्वादश में और वक्रीग्रह उच्चस्थान से द्वितीय में स्वोच्चाभिलाषी कहलाता है) हो उन सबों की दशा-अन्तर्दशा शुभफलप्रद होती है । इनसे भिन्न (अर्थात् नीच, शत्रु आदि गृह में) रहने वाले ग्रह की दशा अशुभफलप्रद होती है ।। ३ ।।

लग्न की दशा में शुभाशुभता—

होरादशा दृकाणैः पूजितमध्याधमा चरे क्रमशः ।
द्विशरीरे विपरीता स्थिरे तु पापेष्टमध्यफला ।।४।।

होरादशेति। होरा लग्नं तस्य दशा द्रेष्काणैः शुभाशुभा ज्ञेया। तत्र चरराशौ लग्नगते प्रथमद्रेष्काणे जातस्य पूजिता दशा भवेत्। द्वितीये मध्यफला, तृतीये अधमा नेष्टा। अनुक्रमेण द्विशरीरे विपरीता तेन द्विःस्वभावराशौ लग्नगते प्रथमद्रेष्काणे अधमा, द्वितीयद्रेष्काणे मध्यफला, तृतीयद्रेष्काणे पूजिता शुभा। स्थिरे स्थिरराशौ लग्नगते प्रथमद्रेष्काणे पापा, द्वितीये इष्टफला, तृतीये द्रेष्काणे मध्यफला बोध्या ।।४।।

चरराशि लग्न में यदि प्रथम द्रेष्काण हो तो श्रेष्ठ, द्वितीय द्रेष्काण हो तो मध्यम, तृतीय द्रेष्काण हो तो अधम फल देनेवाली लग्न की दशा होती है । द्विस्वभावराशि लग्न में इसका उल्टा (अर्थात् प्रथम द्रेष्काण में अधम, द्वितीय में

मध्यम, तृतीय में शुभफल) होता है । एवं स्थिर लग्न में प्रथम द्रेष्काण में अशुभ, द्वितीय में श्रेष्ठ, तृतीय द्रेष्काण में मध्यम फल देने वाली लग्नदशा समझनी चाहिए ।। ४ ।।

अन्तर्दशाधिकारी—

एकर्क्षेऽर्धं त्र्यंशं त्रिकोणयोः सप्तमे तु सप्तांशम् ।
चतुरस्त्रयोस्तु पादं पाचयति गतो ग्रहः स्वगुणैः ।।५।।

एकर्क्षेऽर्धमिति। अन्तर्दशामाह—येन ग्रहेण यो ग्रहः एकर्क्षे स्थितः स तद्दत्तदशाया अर्धमपहृत्य स्वैर्दशागुणैः पाचयति। दशापते स्त्रिकोणयोः स्थितो ग्रहः दशापतिदत्तदशायाः त्र्यशं पाचयति। दशापतेः सप्तमे स्थाने स्थितो ग्रहो दशापतिदत्तदशाकालात्सप्तमांशं स्वैर्गुणैः पाचयति। दशापतेश्चतुर्थस्थान-स्थोऽष्टमस्थानस्थो वा ग्रहपादं चतुर्थांशं दशापतिदत्तकालादपहृत्य स्वगुणैः पाचयति। न केवलं ग्रहाल्लग्नादपि एतेषु स्थानेषु समवस्थितो ग्रहः यथोक्तमंशं पाचयति यद्येकस्था बहवो भवन्ति तदा तेषु मध्ये यो बलवान् स एव पाचयति नान्यः ।।५।।

(सम्पूर्ण आयु का मालिक दशापति होता है, इसलिए उसका भाग पूरा १/१ है) दशापति के साथ जो ग्रह हों उनमें सबसे बली केवल एक ग्रह आधे १/२ का, त्रिकोण (९/५) में रहने वाले में बली एक ग्रह तृतीयांश १/३ का, दशापति से सप्तम में रहने वाले में बली एक ग्रह सप्तमांश १/७ का और चतुरस्र (४/८) में रहने वाले में केवल एक बली ग्रह चतुर्थांश १/४ का अन्तर्दशा पाचनाधिकारी होता है और अपने-अपने गुणानुसार फल भी देता है।।५।।

विशेष–कहने का तात्पर्य यह है कि यहाँ साथ में या त्रिकोण आदि स्थित ग्रहों में केवल एक ही ग्रह पाचक होता है, सब नहीं । इससे सिद्ध होता है कि–यदि दशापति से १।५।९।७।४।८ इन स्थानों में कोई ग्रह नहीं हो तो उस ग्रह की दशा में दूसरे ग्रह की अन्तर्दशा नहीं होगी, अर्थात् स्वयं दशापति ही अन्तर्दशापति भी होगा । कहा भी है—

अन्तर्दशा का साधन प्रकार—

भागाः सदृशच्छेदैर्विवर्जिताः संयुता दशाच्छेदाः ।

प्रत्यंशा गुणकाराः पृथक् पृथक् चान्तर्दशास्ताः ।।६।।

भागा इति। ''भागादौ तु सदा रूपं विन्यस्य सदृशीकृतम् ।
सर्वच्छेदांशसंयोगैश्छिन्द्यादन्तर्दशा फलम् ।।
रूपस्थानगतैरंशैर्यल्लब्धं सङ्गुणीकृतम् ।
दशा ह्यन्तर्दशा प्रोक्ता नित्यं यवनसूरिभिः ।।''

दशापतेरेकर्क्षेऽर्धं त्र्यंशं त्रिकोणयोरित्यादि दर्शितस्थानेषु यो ग्रहो भवति तत्स्थानोक्तसंस्था भागाः रूपस्याधः स्थाप्याः दशापतेरादावेव रूपं परिकल्पयेत्। ततः परस्परच्छेदहता कार्याः, एकैकं प्रत्येकेन छेदेन गुणयेत्। एवं कृते भागाः सदृशच्छेदा भवन्ति। उपरिगता राशयो दशापिण्डस्य पृथक् पृथक् गुणकारा भवन्ति। एकीकृताश्च सर्वेषां एक एव भागहार एव गुणितविभक्ता ग्रहदत्तायुः १।१।१।१।१ पिण्डात् पृथक् पृथक् अन्तर्दशा लभ्यते। तद्यथा—१।२।३।७।४ एते भागाः परस्परच्छेदेन हताः सांशाः कार्या यावत्सर्व एवं समच्छेदा भवन्ति कृता एवंविधा १६८।८४।५६।२४।४२ जाताः एते एव संयुक्ता जाताः ६८।१६८।१६८।१६८।१६८।३७४ छेदाः ग्रहदत्तायुः पिण्डं, वर्षमासदिवसघटिकान्तं संस्थाप्य पृथक् पृथक् गुणकारेण गुणयेत् घटिकानां षष्ट्या भागमपहृत्य दिवसेषु क्षिपेत्, दिवसानां त्रिंशता भागमपहृत्यमासेषु क्षिपेत् मासानां द्वादशभिर्भागमपहृत्य वर्षेषु क्षिपेत्, अवशेषं सर्व स्थाप्य ततो वर्षस्थानेषु भागहारेण ३७४ भागमपहृत्यावाप्तं वर्षाणि। शेषं द्वादशभिः सगुण्यावस्थितान् मासान् संयोज्य छेदेन विभज्य अवाप्तं मासाः वर्षाणामधः स्थाप्याः। तदेवं शेषं त्रिंशता संगुण्यावस्थितानि दिनानि संयोज्य छेदेन विभज्यावाप्तं दिवसाः ते मासानामधः स्थाप्याः। तदेवं शेषं षष्ट्या सङ्गुण्यावस्थिता घटिकाः संयोज्य छेदेन विभाज्यावाप्तं घटिका दिवसानामधः स्थाप्याः। एवं यथासम्भवं सर्वेषां ग्रहाणामन्तर्दशाः कार्याः। दशाविभागक्रमेणैवान्तर्दशाविभाग- कल्पना कर्तव्या। विदशोपदशविभागोऽप्येवमेव ।।६।।

जितने ग्रहों का अन्तर्दशाधिकार प्राप्त हो, दशाधिप सहित उन ग्रहों के भाग लिखकर सभी का समच्छेद कर छेद (हर) का त्याग करें । और अंशों का योग वर्षादि दशा का भाजक एवं प्रत्येक अंश अलग-अलग गुणक होते हैं। इस प्रकार दशामान को अलग-अलग गुणक से गुणा कर भाजक से भाग देने पर अन्तर्दशा होती है ।। ६ ।।

जन्मलग्नकुण्डली

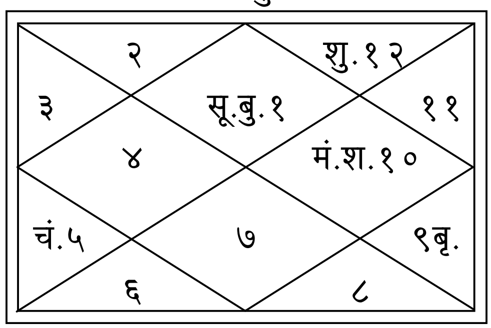

उदाहरण–लग्न की दशा में क्रमानुसार अन्तर्दशा (लग्न १, सूर्य १/३, गुरु १/४) पाचक है । अर्थात् न्यास : १/२, १/३, १/४ समच्छेद करने से १२/१२, ४/१२, ३/१२) क्रमानुसार गुणक १२, ४, ३ । गुणकों का योग=१२+४+३=१९ (हर) ।

लग्न की दशा वर्षादि १०।५।२०।१५।० को लग्न के गुणकांक १२ से गुणा करने पर १२०।६०।२४०।१८०।० हुआ । इसमें हर (१९) का भाग देने पर लब्धि वर्षादि ६।६।४१।१२।३८ आया, जो लग्न की दशा में लग्न की अन्तर्दशा हुई । पुनः दशा वर्षादि (१०।५।२०।१५।०) को रवि ग्रह के गुणकांक ४ से गुणा करने पर ४०।२०।८०।६०।० हुआ । इनमें हर (१९) का भाग देने से लब्धि वर्षादि २।२।१३।४४।१३ आया जो लग्न की दशा में सूर्य की अन्तर्दशा हुई । पुनः दशा वर्षादि (१०।५।२०।१५।० को गुरु ग्रह के गुणकांक ३ से गुणा करने पर ३०।१५।६०।४५।० हुआ । इसमें हर (१२) का भाग देने से लब्धि वर्षादि १।७।२५।१८।९ आया, जो लग्न की दशा में गुरु की अन्तर्दशा हुई । अन्तर्दशा का योग लग्न की दशा के

समान है अर्थात् लग्नान्तर्दशा वर्षादि ६।६।४१।१२।३८ + सूर्यान्तर्दशा वर्षादि २।२।१३।४४।१३ + गुर्वन्तर्दशा वर्षादि १।७।२५।१८।०९ = १०।५।२०।१५।० लग्न की दशा वर्षादि ।। ६ ।।

विशेष–दशाधिप से १।५।९।७।४।८ इन स्थानों में रहने वाले ग्रह अन्तर्दशाधिकारी होते हैं ।

इस प्रकार भारती-हिन्दीटीकासहित लघुजातक में

दशान्तर्दशाध्याय समाप्त ।। १० ।।

अथाष्टकवर्गाध्यायः ।। ११ ।।

सूर्य का अष्टकवर्ग—

केन्द्रायाष्टद्विनवस्वर्कः स्वादार्किभौमतश्च शुभः ।
षट्सप्तान्त्येषु सितात् षडायधीधर्मगो जीवात् ।।१।।
उपचयगोऽर्कश्चन्द्रादुपचयनवमान्त्यधीगतः सौम्यात् ।
लग्नादुपचयबन्धुव्ययस्थितः शोभनः प्रोक्तः ।।२।।

केन्द्रायेति। अथाष्टकवर्गः जन्मकाले यत्रार्को व्यवस्थितः तस्मात्स्थानात्केन्द्रायाष्टद्विनवसु १।४।७।१०।११।८।२।९ अर्कः शुभः, आर्किभौमाभ्यां एतेषु स्थानेषु शुभः। षट्सप्तान्त्येषु सितात् ६।७।१२ एतेषु शुक्राच्छुभः। षडायधीधर्मगो जीवात् ६।११।५।९ एतेषु स्थानेषु गुरोः सकाशाच्छुभः। चन्द्रादुपचयगाः ३।६।११।१० एतेषु चन्द्राच्छुभः। सौम्यादुपचयनवान्त्यधीयुतः ३।६।११।१०।९। १२।५ एतेषु सौम्याच्छुभः। लग्नादुपचयबन्धुव्यवस्थितः ३।६।११।१०।४।१२ एतेषु लग्नात् शुभः। इति सूर्यः ।।१-२।।

जन्मलग्न कुण्डली में सूर्य जिस स्थान में हो वहाँ से १।४।७।१०।११।८।२।९ इन स्थानों में शुभ हैं, एवं शनि और मङ्गल से भी इन्हीं स्थानों में सूर्य को शुभ समझना । इसी प्रकार शुक्र से ६।७।१२ में, बृहस्पति से ६।११।५।९ में, चन्द्र से ३।६।१०।११ में, बुध से ३।६।१०।११।९।१२।५ में तथा लग्न से ३।६।१०।११।४।१२ इनमें सूर्य शुभ है । अर्थात् ये स्थान शुभ तथा इनसे भिन्न स्थान अशुभ हैं ।। १-२ ।।

चन्द्र का अष्टकवर्ग—

शश्युपचयेषु लग्नात्साद्यमुनिः स्वात्कुजात्स्वनवधीषु ।
सूर्यात् साष्टस्मरगस्त्रिषडायसुतेषु सूर्यसुतात् ।।३।।
ज्ञात् केन्द्रत्रिसुतायाष्टगो गुरोर्व्ययायमृत्युकेन्द्रेषु ।
त्रिचतुःसुतनवदशमद्युनायगश्चन्द्रमाः शुक्रात् ।।४।।

शस्युपचयेष्विति। चन्द्रो लग्नात् ३।६।११।१० एतेषु शुभः। स्वात् स्वस्थानात् प्रथमसप्तमसहितेषूपचयेषु ३।६।११।१०।१।७ एतेषु शुभः। कुजात्स्वनवधीसहितेषूपचयेषु ३।६।११। १०।२।९।५ एतेषु शुभः। सूर्यात्साष्टस्मरगः ३।६।११।१०।८।७ एतेषु शुभः। शनैश्चरात् त्रिषडाय-सुतेषु ३।६।११।५ एतेषु शुभः। बुधात् केन्द्रत्रिसुतायाष्टगः १।४।७।१०।३।५।११।८ एतेषु शुभः। गुरोः व्ययायमृत्युकेन्द्रेषु १२।११।८।१।४।७।१० शुभः। शुक्रात् त्रिचतुःसुतनवमदशद्युनायगः ३।४। ५।९।१०।७।११ एतेषु शुभः। इति चन्द्रः ।।३-४।।

लग्न से ३।६।१०।११ इन स्थानों में चन्द्रमा शुभ होता है । अपने अधिष्ठित स्थान से १।७।३।६।१०।११ में, मङ्गल से २।९।५।३।१०।११ में, सूर्य से ८।७।३।६।१०।११ में, शनि से ३।६।११।५ में, बुध से १।४।७।१०।३।५।११।८ में, बृहस्पति से १२।११।८।१।४।७।१० में तथा शुक्र से ३।४।५।९।१०।७।११इनमें चन्द्रमा शुभ होता है ।। ३-४ ।।

मङ्गल का अष्टकवर्ग—

भौमः स्वादायस्वाष्टकेन्द्रगस्त्र्यायषट्सुतेषु बुधात् ।
जीवाद् दशाय-शत्रु-व्ययेष्विनादुपचय-सुतेषु ।।५।।
उदयादुपचयतनुषु त्रिषडायेष्विन्दुतः समो दशमः ।
भृगुतोऽन्त्यषडष्टायेष्वसितात् केन्द्रायनववसुषु ।।६।।

भौम इति। भौमः स्वस्थानतः ११।२।८।१।८।७।१० एतेषु शुभः। बुधात् ३।११। ६।५ एतेषु शुभः। जीवात् १०।११।६।१२ एतेषु शुभः। सूर्यादुपचयसुतेषु ३।६।११।१०।५ एतेषु शुभः। भौमो लग्नात् ३।६।१०।११।१ एतेषु शुभः। इन्दुतः ३।६।११ एतेषु शुभः। चन्द्राद् दशमे समः न शुभो नाप्यशुभः। शुक्रात् १२।६।८।११ एतेषु शुभः। शनैश्चरात् १।४।७।१०।११।९।८ एतेषु शुभः। इति भौमः ।।५-६।।

मङ्गल अपने अधिष्ठित स्थान से ११।२।८।१।४।७।१० इन स्थानों में शुभ होता है । बुध से ३।११।६।५ में, बृहस्पति से १०।११।६।१२ में, सूर्य से ३।६।१०।११।५ में, लग्न से ३।६।१०।११।१ में, चन्द्रमा से ३।६।११ में, शुक्र से १२।६।८।११ में, तथा शनि से १।४।७।१०।११।९।८ इनमें मंगल शुभ होता है ।। ५-६।।

''समो दशम:'' अर्थात् मङ्गल चन्द्रमा से १० वें स्थान में सम (न शुभ, न अशुभ=फलशून्य) है–ऐसा पाठ ग्रन्थकार का बनाया नहीं हो सकता, क्योंकि अपने ही पूर्व ग्रन्थ बृहज्जातक में वराहमिहिर ने अष्टकवर्गाध्याय में कहीं भी सम स्थान की चर्चा नहीं की है । मङ्गलाष्टक वर्ग में 'चन्द्राद्दिग्विफलेषु' जो यह पाठ है–प्रतीत होता है कि आद्य टीकाकार भट्टोत्पल ने प्रमादवश से दशमरहितेषु न समझकर फलशून्य समझकर (समो दशम:) ऐसा पाठ बना दिया है–जिसे ही अब तक के समस्त टीकाकारजन दोहराते चले आ रहे हैं।–वस्तुत: अत्र—
त्रिषडायेष्विन्दुत: शुभ: प्रोक्त: । इति पाठ: समुचित: ।

बुध का अष्टकवर्ग—

सौम्योऽन्त्यषण्णवायत्मजेष्विनात् स्वात् त्रितनुदशयुतेषु ।
चन्द्राद्विरिपुदशायाष्टसुखगत: स्वात् सादिषु विलग्नात् ।।७।।
प्रथमसुखायद्विनिधनधर्मेषु सितात् त्रिधीसमेतेषु ।
साशास्मरेषु सौरारयोर्व्ययायरिपुवसुषु गुरो: ।।८।।

सौम्य इति। बुध: सूर्यात् १२।६।९।११।५ एतेषु शुभ:। स्वस्थानात् १२।६।९। ११।५।३।१।१० एतेषु शुभ:। चन्द्रात् २।६।१०।११।८।४ एतेषु शुभ:। लग्नात् २।६।१०।११। ८।४।१ एतेषु शुभ:। बुध: शुक्रात् १।४।११।२।८।९।३।५ एतेषु शुभ:। शनैश्चरात् १।४।११।२। ८।९।३।५।१०।७ एतेषु शुभस्तथा शनैश्चरात् भौमाच्च १।४।११।२। ८।९।३।५।१०।७ एतेषु शुभ:। जीवात् १२।११।६।८ एतेषु शुभ:। इति बुध: ।।७-८।।

सूर्य से १२।६।९।११।५ इन स्थानों में बुध शुभ होता है तथा अपने आश्रित स्थान से १२।६।९।११।५।३।१।१० में, चन्द्रमा से २।६।१०।११।८।४ में, लग्न से २।६।१०।११।८।४।१ में, शुक्र से १।४।११।२।८।९।३।६५ में, शनि और मङ्गल से १।४।११।२।८।९।३।५।१०।७ में तथा बृहस्पति से १२।११।६।८ इनमें बुध शुभ होता है।।७-८।।

गुरु का अष्टकवर्ग—

जीवो भौमाद् द्व्यायाष्टकेन्द्रगोऽर्कात् सधर्मसहजेषु ।
स्वात् सत्रिकेषु शुक्रान्नवदशलाभस्वधीरिपुषु ।।९।।
शशिनः स्वरत्रिकोणार्थलाभगस्त्रिरिपुधीव्ययेषु यमात् ।
नवदिक्सुखाद्यधीस्वायशत्रुषु ज्ञात् सकामगो लग्नात् ।।१०।।

जीव इति। जीवो भौमात् २।११।८।१।४।७।१० एतेषु शुभः। सूर्यात् २।११।८। १।४।७।१०।९।३ एतेषु शुभः। स्वस्थानात् २।११।८।१।४।७।१०।३ एतेषु शुभः। शुक्रात् ९। १०।११।२।५।६ एतेषु शुभः। जीवः शशिनः ७।९।५।२।११ एतेषु शुभः। शनैश्चरात् ३।६।५।१२ एतेषु शुभः। बुधात् १।१०।४।१।५।२।११।६ एतेषु शुभः। लग्नात् ९।१०।४।१।५।२।११।६।७ एतेषु शुभः। इति गुरुः ।।९-१०।।

बृहस्पति जन्म कुण्डली में स्थित मङ्गल से २।११।८।१।४।७।१० में शुभ होता है । इसी प्रकार सूर्य से ९।३।२।११।८।१।४।७।१० में, अपने आश्रित स्थान से ३।२।११।८।१।४।७।१० में, शुक्र से ९।१०।११।२।५।६ में, चन्द्रमा से ७।५।९।२।११ में, शनि से ३।६।५।१२ में, बुध से ९।१०।४।१।५।२।११।६ में तथा लग्न ५।७।९।१०।४।१।२।११।६ इनमें बृहस्पति शुभ होता है ।। ९-१० ।।

शुक्र का अष्टकवर्ग—

शुक्रो लग्नादासुतनवाष्टलाभेषु सव्ययश्चन्द्रात् ।
स्वात् सदिगसितात् त्रिसुखात्मजाष्टदिग्धर्मलाभेषु ।।११।।
वस्वन्त्यायेष्वर्कान्नवदिग्लाभाष्टधीस्थितो जीवात् ।
ज्ञात् त्रिसुतनवायारिष्वायसुतापोऽक्लिमेषु कुजात् ।।१२।।

शुक्र इति। शुक्रो लग्नात् १।२।३।४।५।९।८।११ एतेषु शुभः, चन्द्रात् १।२।३। ४।५।९।८।११।१२ एतेषु शुभः, स्वात् स्वस्थानात् १।२।३।४।५।८।१०।९।११ एतेषु शुभः, शनैश्चरात् ३।४।५।८।१०। ९।११ एतेषु शुभः। शुक्रः सूर्यात् ८।१२।११ एतेषु शुभः, जीवात् ९। १०।११।८।५ एतेषु शुभः: ज्ञाद् बुधात् ३।५।९।११।६ एतेषु शुभः, भौमात् ११।५।३।६।९।१२ एतेषु शुभः। इति शुक्रः ।।११-१२।।

शुक्र लग्न से १।२।३।४।५।९।८।११ स्थान में शुभ होता है । चन्द्रमा से १।२।३।४।५।९।८।११।१२ में, अपने आश्रित स्थान से १।२।३।४।५।९।८।११।१० में, शनि से ३।४।५।८।१०।९।११ में, सूर्य से ८।१२।११ में, बृहस्पति से ९।१०।११।८।५ में, बुध से ३।५।९।११।६ में तथा मंगल से ११।५।३।६।९।१२ इनमें शुक्र शुभ है।। ११-१२ ।।

शनि का अष्टकवर्ग—

स्वात् सौरिस्त्रिसुतायारिगः कुजादन्त्यकर्मसहितेषु ।
स्वायाष्टकेन्द्रगोऽर्काच्छुक्रात् षष्ठान्त्यलाभेषु ।।१३।।
त्रिषडायगः शशाङ्कादुदयात् ससुखाद्यकर्मगोऽथ गुरोः ।
सुतषट्व्ययायगो ज्ञात् व्ययायरिपुदिङ्नवाष्टस्थः ।।१४।।

स्वात्सौरिरिति। शनिः स्वस्थानात् ३।५।११।६ एतेषु शुभः, कुजात् ३।५।११।६। १२।१० एतेषु शुभः। सूर्यात् २।११।८।१।४।७।१० एतेषु शुभः। शुक्रात् ६।१२।११ एतेषु शुभः। चन्द्रात् ३।६।११ एतेषु शुभः।

लग्नात् ३।६।११।४।१।१० एतेषु शुभः, जीवात् ५।६।१२।११ एतेषु शुभः, बुधात् १२।११।६।१०।९।८ एतेषु शुभः। इति शनिः।।१३-१४।।

शनि अपने आश्रित स्थान से ३।५।११।६ स्थान में शुभ, मंगल से ३।५।११।६।१२।१० में, सूर्य से २।११।८।१।४।७।१० में, शुक्र से ६।१२।११ में, चन्द्र से ३।६।११ में, लग्न से ३।६।११।४।१।१० में, बृहस्पति से ५।६।१२।११ में, तथा बुध से १२।११।६।१०।९।८ इनमें शनि शुभ होता है ।। १३-१४ ।।

अष्टकवर्ग फलनिरूपण—

स्थानेष्वेतेषु शुभाः शेषेष्वहिता भवन्ति चाष्टानाम् ।
अशुभशुभविशेषफलं ग्रहाः प्रयच्छन्ति चारगताः ।।१५।।

स्थानेष्वेतेषु शुभा इति। ते ग्रहा एतेषु स्थानेषु पूर्वोक्तेषु हिताः शेषेषु अशुभाः। तत्र शुभाऽशुभविशेषमन्तरं कृत्वा यद्विशिष्यते तद्वशात् शुभाऽशुभं वाच्यम्। तदेव ग्रहाः राशौ राशौ चारतः फलं प्रयच्छन्ति। एतदुक्तं भवति। केन्द्रायाष्टद्विनवस्वित्यनेन पाठेन यान्युक्तानि तेषु शोभनं फलं शेषेषु अशोभनम्। यानि शुभस्थानानि गदितानि तानि बिन्दूपलक्षितानि कार्याणि यानि अशुभानि तानि रेखोपलक्षितानि, ततः इष्टानिष्टयोर्विशेषं कृत्वा यदधिकं भवति, तत्फलं ज्ञेयम्। एवमेकत्र निश्चितानि अष्टौ फलानि भवन्ति। यत्र शुभाऽशुभयोः साम्यं तत्र समत्वं ज्ञेयम्। यत्र बिन्द्वष्टकं जातं तत्र शुभं पूर्णम्। यत्र षड्बिन्दवः तत्र पादोनं फलम्। यत्र बिन्दुचतुष्टयं तत्रार्धम्। यत्र बिन्दुद्वयं तत्र पादफलं ज्ञेयम्। एवमष्टकवर्गैः सर्वेषां विचारः करणीयः।

बिन्दोरधिके शुभदं रेखाऽधिके नैव शोभनं भवति ।
विफलं गोचरगणितमष्टकवर्गेण निर्दिष्टम् ।।१५।।

इस प्रकार जिस ग्रह के लिए जहाँ-जहाँ से जो स्थान कहे गये हैं–वे स्थान शुभफलप्रद और उनमें भिन्न स्थान अशुभ समझना । एवं लग्न सहित सातों ग्रहों के स्थान में शुभ और अशुभ सूचक चिन्ह लगाना, इस प्रकार शुभ और अशुभ मिलकर प्रत्येक-प्रत्येक राशि में आठ (८) चिन्ह होगें, उनमें जिस-

जिस राशि में शुभ चिन्ह अधिक हो, चारवश उस-उस राशि में ग्रह के जाने पर शुभफल अधिक अशुभ सूचक चिन्ह में जाने से अशुभफल समझना ।।१५।।

विशेष–इस प्रकार अष्टक वर्ग कुण्डली में शुभस्थान में रेखा (१) और अशुभ स्थान में बिन्दु (०) की कल्पना करनी चाहिये । यहाँ जिस राशि में १ से ३ तक रेखा हो वहाँ अशुभ, ४ में मध्यम और ४ से अधिक रेखायें होने पर उत्तरोत्तर शुभफल समझना । कहा भी है—

''कष्टं स्याच्चैकरेखायां द्वाभ्यामर्थक्षयो भवेत् ।
त्रिभिः क्लेशं विजानीयाच्चतुर्भिः समता मता ।।
पञ्चभिः क्षेममारोग्यं षड्भिरर्थागमौ भवेत् ।
सप्तभिः परमानन्दमष्टाभिः सर्वकामदम् ।।"

इस प्रकार गोचर से ग्रहों के शुभत्व और अशुभत्व जानना, क्योंकि जहाँ केवल चन्द्र से जो ग्रह शुद्धि कही गई है उसके अनुसार उस ग्रह की शुद्धि नहीं होने पर भी तत्काल में उक्त अष्टकवर्गों की शुद्धि से शुद्धि समझी जाती है ।

यथा–मेष राशिवालों के लिये गोचर से वृश्चिक राशि का गुरु अष्टम होने से अशुभ कहा गया है, किन्तु यदि गुर्वष्टकवर्ग कुण्डली में वृश्चिक राशि में अधिक शुभ (१) चिन्ह पड़ा हो तो गुरु शुद्धि ही समझी जाती है ।

विशेष ज्ञातव्य–इस ग्रन्थ में संस्कृत टीकाकार भट्टोत्पल ने उपरोक्त अपनी टीका में शुभ के स्थान में बिन्दु (०) और अशुभ में ही रेखा (१) चिन्ह की और मैंने जो भाषा-विशेषादि में विपरीत (शुभ में रेखा और अशुभ में बिन्दु) चिन्ह की जो कल्पना की इसका अभिप्राय मात्र बहु प्रचलित (मान सागरी आदि ग्रन्थों में प्रचलित) होने के नाते ही की है ।

इति लघुजातके अष्टकवर्गाध्यायः ।। ११ ।।

अथ प्रकीर्णाध्यायः ।। १२ ।।

अनफा, सुनफा, दुरुधरा, केमद्रुमयोग—

रविवर्ज्यं द्वादशगैरनफा चन्द्राद् द्वितीयगैः सुनफा ।
उभयस्थितैर्दुरुधरा केमद्रुमसंज्ञकोऽतोऽन्यः ।।१।।

रविवर्ज्यमिति। अथ प्रकीर्णाध्यायं व्याख्यास्यामः। तत्रादौ चन्द्रयोगप्रकरणम्। रविवर्ज्यं सूर्यं वर्जयित्वा चन्द्राद् द्वादशे स्थाने भौमबुधजीवसितसौराणामन्यतमो भवति तदा अनफा नामयोगो भवति। अत्र रविवर्ज्यमित्युक्तम्। तत्रादित्यो योगकर्तृकग्रहगणनया न गण्यते। अथ तेषामेव ग्रहाणां मध्ये कश्चिच्चन्द्राद् द्वितीये स्थाने भवति तदा सुनफानाम योगो भवति। अथ चन्द्राद् द्वितीयद्वादशे स्थाने त एव ग्रहा भवन्ति तदा दुरुधरायोगः। यदा चन्द्राद् द्वितीयद्वादशयोः स्थानयोरुभयोरपि भौमादीनां मध्ये कश्चिन्न भवति तदा केमद्रुमयोगो भवति ।।१।।

सूर्य को छोड़कर अन्य (मङ्गलादि) ग्रह जन्मकालिक चन्द्रमा से १२ वें स्थान में हो तो अनफा, द्वितीय में हो तो सुनफा, यदि दोनों (१२/२) स्थान में हो तो दुरुधरा एवं यदि इन दोनों (१२/२) में से किसी भी स्थान में कोई ग्रह न हो तो केमद्रुम नामका योग होता है ।। १ ।।

अनफादि योगों के फल—

सच्छीलं विषयसुखान्वितं प्रभुं ख्यातियुक्तमनफायाम् ।
सुनफायां धीधनकीर्तियुक्तमात्मार्जितैश्वर्यम् ।।२।।
बहुभृत्यकुटुम्बारम्भं सुखभोगान्वितं च दौर्धरिके ।
भृतकं दुःखितमधनं जातं केमद्रुमे विद्यात् ।।३।।

सच्छीलमिति। शोभनशीलं विषयसुखान्वितं इन्द्रियसुखान्वितं प्रभुं समर्थ ख्यातियुक्तं कीर्तियुक्तं एवंविधमनफायां भवति। सुनफायां धीः बुद्धिः, धनं अर्थः, कीर्तिः ख्यातिः एभिर्युक्तमात्मार्जितैश्वर्यं स्वयमर्जितार्थं विद्यात्। एवंविधं सुनफायोगे जातो भवति। अथ दुरुधराकेमद्रुमयोर्जातस्य स्वरूपमाह— बहुभृत्यं बहुकुटुम्बं बहुकार्यारम्भं नित्योद्विग्नचित्तं एवंविधं दुरुधरायोगे जातं जानीयात्।

भृतकमिति। भृतकं कर्मकरं दि:खितं दुखान्वितमधनं दरिद्रम् एवंविधं केमद्रुमे जातं विद्यात् ।।२-३।।

अनफा योग में उत्पन्न जातक सुन्दर शीलवाल, सब सुखों से युक्त, सामर्थ्यवान् और बड़ा यशस्वी होता है। सुनफा में–बुद्धि, धन, कीर्ति से युक्त तथा अपने बाहुबल से ऐश्वर्य को प्राप्त करनेवाला । दुरुधरा में –बहुत नौकरों और कुटुम्बियों से युक्त, अनेक कार्यों को आरम्भ करनेवाला तथा सुख भोग से युक्त रहनेवाला होता है । एवं केमद्रुमयोग में उत्पन्न जातक भृतक (मजबूरी आदि करके पेट पालनेवाला) दु:खी और दरिद्र होता है ऐसा जानना चाहिये।।२-३ ।।

अनफादियोगकारक ग्रहों के फल—

भौमः शूरश्चण्डो महाधनो ज्ञानवान् बुधो निपुणः ।
ऋद्धः शुक्रः सुखितो गुरुर्गुणाढ्यो नृपतिपूज्यः ।।४।।
बह्वारम्भः सौरिर्बहुभृत्याः पूजितो गुणैर्विद्धः ।
एषां गुणैः समगुणा ज्ञेया योगोद्भवाः पुरुषाः ।।५।।

भौम इति। यदा सुनफानफादुरुधराणां भौमो योगकर्ता भवति तदा चौरश्चण्डश्च भवति। चण्डस्तीक्ष्णः। बुधश्चेत्तदा महाधनो ज्ञानवान् निपुणश्च। शुक्रश्चेत् तदा ऋद्धः ईश्वरः सुखी। गुरुश्चेत् तदा गुणाढ्यो राजपूज्यश्च। सौरिश्चेत् तदा बहुकार्यारम्भी बहुभृत्यः बहुसेवकः पूजितः सर्वैः सेवितः, गुणैर्वृद्धश्च। एषां गुणैरिति—एषां ग्रहाणां गुणैः समगुणा ज्ञेयाः। तत्र यदेव ग्रहस्य रूपमुक्तं तत्कृते अनफा- सुनफादुरुधरायोगे जातः पुरुषः तादृशो भवति। द्वाभ्यां कृते द्वयोर्गुणसम्बन्धं प्राप्नोति। बहुभिः कृते बहुसम्बन्धी भवति ।।४-५।।

अनफादि योग कारक ग्रह यदि मङ्गल हो तो मनुष्य शूर, चण्ड (साहसी) और महाधनवान्, बुध हो तो ज्ञानवान् और सब कामों को करने में विशेष चतुर, शुक्र हो तो समृद्धिवान् और सुखी, बृहस्पति हो तो गुणवान् और राजपूज्य शनि हो तो बहुत नौकरों से युक्त, बड़े-बड़े कामों का आरम्भ करने वाला, लोगों का पूज्य और गुणों से सम्पन्न होता है । इसमें जो ग्रह योगकारक हों उन ग्रहों के गुण के

समान जातक के भी गुण समझना । यदि कोई ग्रह योगकारक हों तो उन सबों के गुणों से युक्त जातक को समझना चाहिये।।४-५।।

विशेष–यहाँ संस्कृत टीका में भट्टोत्पल ने ''भौमश्चौरश्चण्डो'' ऐसा पाठ रखकर टीका की है । इस प्रकार का पाठ असङ्गत होने के कारण प्रामादिक प्रतीत होता है । कारण स्वयं वराहमिहिर ने मङ्गल का गुण बृहज्जातक में– ''उत्साहशौर्य्यधनसाहसवान् महीजः'' कहा है । अतः 'भौमः शूरश्चण्डो पाठ ही समुचित है ।

सूर्य से विशेष योग—

सूर्याद् द्वितीयमृक्षं वेशिस्थानं प्रकीर्तितं यवनैः ।
तच्चेष्टग्रहयुक्तं जन्मनि चेष्टासु च विलग्नम् ।।६।।

सूर्यादिति। यस्मिन् राशावादित्यो व्यवस्थितस्याद्यो द्वितीयो राशिस्तस्य वेशीति संज्ञा यवनैः प्रकीर्तिता कथिता वेशिस्थानं जन्मनीष्टग्रहयुक्तं प्रशस्तं, चेष्टासु यात्रासु च विलग्नं तदा वेशिस्थानं प्रशस्तमिष्यते ।।६।।

सूर्य से द्वितीय राशि को यवनाचार्यों ने वेशि संज्ञक कहा है । वह यदि जन्म समय में शुभग्रह (इष्ट ग्रह) से युक्त हो तो शुभफल होता है । एवं यदि यात्रा के समय उक्त स्थान में शुभग्रह हो तो यात्रा शुभदायिनी कही गयी है ।।

द्विग्रह योग—

यन्त्रज्ञं पापरतं निपुणं क्रूरं च शस्त्रवृत्तिं च ।
धातुज्ञं च क्रमशश्चन्द्रादिभिरन्वितः सूर्यः ।।७।।

यन्त्रज्ञमिति। अथ द्विग्रहयोगप्रकरणम्—तत्रादावादित्ये चन्द्रादियुक्ते जातस्य स्वरूपमाह—चन्द्राद्यर्कयोगः आदित्ये चन्द्रमसा युक्ते जातं यन्त्रज्ञं ज्ञेयम्। यन्त्राणि शतघ्नीप्रभृतिनि जानाति। भौमेन पापरतम्। बुधेन निपुणं कार्ये सूक्ष्मदृष्टिम्। बृहस्पतिना क्रूरम्। शुक्रेण शस्त्रवृत्तिं क्षात्रवृत्तिम्। शनैश्चरेण धातुज्ञं सुवर्णादिज्ञम् ।।७।।

जन्म समय में सूर्य यदि चन्द्रमा से युक्त हो तो जातक नाना प्रकार के यन्त्रादिकों का विशेषज्ञ, मङ्गल से युत हो तो पाप कर्म में रत रहनेवाला, बुध से युत हो तो सब कार्यों में निपुण, बृहस्पति से युत हो तो क्रूर (उग्र) स्वभाव वाला, शुक्र से युत हो तो अस्त्र-शस्त्रादिकों से जीविका चलानेवाला और यदि सूर्य शनि से युत हो तो जातक धातुओं (सोना, चाँदी, ताम्बा इत्यादि) का विशेषज्ञ अथवा इनके आभूषणादिक बनाने के कर्म में निपुण होता है ।। ७ ।।

चन्द्रोऽङ्गारकपूर्वैः कूटज्ञं प्रश्रितं कुलाभ्यधिकम् ।
वस्त्रव्यवहारज्ञं क्रमेण पौनर्भवं चापि ।।८।।

चन्द्रोऽङ्गारकेति। चन्द्रोऽङ्गारकादियुवते जातस्य स्वरूपमाह— चन्द्रेऽङ्गारकेण युक्तः कूटज्ञः कुलकुशलहारी भवेत्। बुधेन युक्तः प्रसृतं वाक्यनिपुणं प्रियवादी भवेत्। जीवेन युक्तः कुलप्रसिद्धः भवेत् । शुक्रेण युक्तः वस्त्रविक्रयज्ञः भवेत्। शनैश्चरेण युक्तः पुनर्भूपुत्रः स्यात् ।।८।।

चन्द्रमा मङ्गल से युत हो तो मायाविद्, बुध से युत हो तो विनयी, बृहस्पति से युत हो तो अपने कुल में श्रेष्ठ, शुक्र से युत हो तो कपड़े आदि का व्यापार करने में निपुण और यदि शनि से युत हो तो जातक पुनर्भूस्त्री का पुत्र होता है ।। ८ ।।

मल्लो रक्षोऽन्यस्त्रीसक्तो दुःखान्वितः कुजो ज्ञाद्यैः ।
ज्ञो जीवाद्यैर्गीतज्ञं वाग्मिनं महेन्द्रजालज्ञम् ।।९।।

मल्ल इति। अङ्गारके बुधेन युक्तः जातो मल्लो भवति। जीवेन रक्षकः। शुक्रेण परदाररतः। सौरेण दुःखान्वितो भवति। बुधे गुर्वादियुवते जातस्य स्वरूपमाह–बुधे जीवेन युक्तो गीतज्ञो भवति। शुक्रेण वाग्मी पण्डितो भवति। शनैश्चरेण युक्तो मायाज्ञः इन्द्रजालज्ञश्च भवति ।।९।।

मङ्गल यदि बुध से युत हो तो जातक मल्ल-युद्धादि में कुशल, बृहस्पति से युत हो तो दूसरों को अनेक विपदाओं से बचाने वाला, शुक्र से युत हो तो परस्त्रीगामी और शनि से युत हो तो दुःखी होता है ।

एवं बुध यदि बृहस्पति से युत हो तो बालक संगीत आदि विद्या में निपुण, शुक्र से युत हो तो वक्ता और शनि से युत हो तो इन्द्रजाल विद्या का जानकार होता है ।। ९ ।।

जीवः सितेन बहुगुणमसितेन समन्वितोऽत्र घटकारम् ।
स्त्रीस्वं मन्देन सितस्त्रिभिरप्येवं फलानि वदेत् ।।१०।।

जीव इति। जीवे सितादियुवते जातस्य स्वरूपमाह—जीवः सितेन युतो जातं बहुगुणं करोति। शनैश्चरेण समन्वितो यदा जीवः तस्मिन् योगे जातं घटकारं कुम्भकारं करोति। शुक्रशनैश्चरयोगे जाते स्त्रीधनं करोति। स्त्रीसकाशाद्धनमाप्नोति। अन्ये च स्त्रियो वल्लभत्वाद्धनं प्रयच्छन्ति। इति स्त्रीणां वल्लभत्वाद्धनागम इत्यर्थः। त्रिभिरप्येवं फलानि वदेत्। यदा ग्रहास्त्रय एव राशौ भवन्ति तदा द्वग्रहयोगवत् त्रयस्यापि फलं वक्तव्यम्। यदार्कचन्द्राङ्गारका एकराशिगतास्तदाऽऽदित्यचन्द्रयोगवत्फलमुक्तं, चन्द्राङ्गारकयोगेन यत्फलमुक्तं, आदित्याङ्गारकयोगेन च यत्फलमुक्तं तत्फलं त्रयमपि वाच्यम्। एवं यथासम्भवं ग्रहत्रयस्य फलं वाच्यम् ।।१०।।

बृहस्पति यदि शुक्र से युत हो तो बहुत गुणों से युक्त, शनि से युत हो तो कुम्भकार समझना । तथा शुक्र यदि शनि से युत हो तो जातक को स्त्री के द्वारा धन की प्राप्ति कहना । इसी प्रकार तीन ग्रह के योग से भी ऐसे ही फल कहना ।। १० ।।

प्रव्रज्यायोगनिरूपणम्—

चतुरादिभिरेकस्थैः प्रव्रज्यां स्वां ग्रहः करोति बली ।
बहुवीर्यैस्तावत्यः प्रथमा वीर्याधिकस्यैव ।।११।।

चतुरादिभिरिति। अथ चतुर्ग्रहयोगनिरूपणम्। यस्य जन्मनि ग्रहाश्चत्वार एकराशिगता भवन्ति स प्रव्रज्यामाप्नोति। तेषामेकराशिगतानां मध्ये यो बली भवति स स्वां प्रव्रज्यां करोति ग्रहः। बहुवीर्यैरिति—यदि बहवो ग्रहा बलिनो भवन्ति तदा बह्व्यः प्रव्रज्याः बहूनां सम्बन्धिनीः प्रव्रज्याः प्राप्नोति। एतेषां ग्रहाणां मध्ये योऽतिबली पूर्वं तस्यैव प्रव्रज्या वक्तव्या। अन्येषां बलं विचार्य उत्तरोत्तरं

प्रव्रज्या वक्तव्या। चतुरादिष्वेकस्थेषु यदि कश्चिद् ग्रहो न बली भवति तदा जातस्य प्रव्रज्या नैव वक्तव्या ।।११।।

पहले एक स्थान में ३ ग्रह तक के योग कह चुके हैं, अब यदि एक स्थान में ३ से अधिक (४,५ आदि) ग्रह हों तो ऐसे योग को प्रव्रज्यायोग कहते हैं । उनमें ग्रह अपने बलक्रम से प्रव्रज्या को देते हैं–अर्थात् यदि बहुत ग्रह बलवान् हों तो जितने ग्रह बली हों उतनी प्रव्रज्या होती है, एवं उनमें सबसे अधिक बलवान् ग्रह की प्रव्रज्या पहले, उसके बाद बलक्रम से प्रव्रज्या समझना।। ११ ।।

विशेष–जिस योग से जातक घर छोड़कर प्रव्रजित होता है–वह प्रव्रज्या कहलाती है । तथा उक्त योगकारक ग्रहों में यदि सब ही निर्बल हों तो प्रव्रज्यायोग भङ्ग समझना । कहा भी है—

''यावन्तो वीर्ययुता: प्रव्रज्या भवन्ति तावत्य:'' ।

सूर्यादिग्रहों की प्रव्रज्या—

तापसवृद्धश्रावकरक्तपटाजीविभिक्षुचरकाणाम् ।
निर्ग्रन्थानां चार्कात् पराजितै: प्रच्युतिर्बलिभि: ।।१२।।

तापसवृद्धेति। तत्र न ज्ञायते कस्य का प्रव्रज्या तदर्थमाह— चतुरादिनामेकस्थानां मध्यादर्के बलवति तापसो भवति। तापसो वानप्रस्थ:। चन्द्रे बलिनि वृद्ध: श्रावक: कापालिक:। भौमे बलिनि रक्तपट:। बुधे आजीवी एकदण्डी। गुरौ बलवति भिक्षु: त्रिदण्डी। शुक्रे बलिनि चरक: चक्रधर:। सौरे बलवति निर्ग्रन्थो नग्न: क्षपणक: प्रावरणरहित इत्यर्थ:। अर्कादारभ्य क्रमेण पराजितै: प्रच्युतिबलिभिरिति। चतुर्णामेकस्थानां यो बली ग्रह: स चेत् ग्रहयुद्धेऽन्येन ग्रहेण पराजितो भवति तदा ग्रहोक्तप्रव्रजितो भूत्वा नरस्तां त्यजति। एवं बहुषु बलवत्सु पराजितेषु बह्वीष्वपि प्रव्रज्यास्वस्थित- स्तास्त्यजति ।।१२।।

प्रव्रज्यायोग कारक ग्रहों में सबसे बली सूर्य हो तो जातक वानप्रस्थ को, चन्द्रमा बली हो तो श्रावक (कापाकिल), मंगल से बौद्ध, बुध से भिक्षु (एकदण्डी), बृहस्पति से त्रिदण्डी, शुक्र से चक्रधर और यदि सबसे बली शनि

हो तो नागा (वस्त्रहीन रहनेवाला) होता है। इन प्रव्रज्या कारक ग्रहों में यदि बलीग्रह किसी दूसरे ग्रह से युद्ध में पराजित हो गया हो तो उस प्रव्रज्या को ग्रहण करके पुनः उसको छोड़कर विजयी ग्रह की प्रव्रज्या को धारण कर लेता है।।१२।।

विशेष—एक राशि में मङ्गलादि दो ग्रहों के अंश-कला तुल्य होना युद्ध कहलाता है । उनमें जो उत्तर दिशा में रहता है–वह जयी और दक्षिण दिशा बाला पराजित समझा जाता है ।

प्रव्रज्यायोग में विशेषता—

दिनकरलुप्तमयूखैरदीक्षिता भक्तिवादिनस्तेषाम् ।
याचितदीक्षा बलिभिः पराजितैरन्यदृष्टैर्वा ।।१३।।

दिनकरलुप्तेति। अत्रैव विशेषमाह—चतुरादीनामेकास्थानानां यावन्तो बलिनो ग्रहास्तावन्तः प्रव्रज्यादायकास्तत्रापि बलिनां मध्ये यावन्तो रविलुप्तकिरणा अस्तमितास्तावन्तः स्वां स्वां प्रव्रज्यां न प्रयच्छन्ति। किन्तु ग्रहप्रव्रज्याप्रव्रजितानां मध्ये भक्तिं प्रयच्छन्ति। तत्र रविलुप्तकिरणोऽस्तमय एकस्मिन्नेव राशिगतेऽर्केण संयुक्तः अस्तमितो भवति। पृथग्राशिनामपि युक्तोऽस्तमितो भवति। याचितदीक्षा इति- चतुरादीनामेकस्थानां बली ग्रहः समागमेऽन्येन ग्रहेण निर्जितोऽन्येन च दृश्यते तदा प्रव्रज्यां याचमानोऽपि नाप्नोति। पूर्वोवतैः बलिभिः पराजितैः प्रच्युतस्तदाऽन्यदृष्टैर्वेति विशेषणम्। वा शब्दश्च शब्दस्यार्थे ।।१३।।

पूर्वोक्त प्रव्रज्याकारक ग्रह यदि सूर्य के किरण सान्निध्यवश अस्त हो तो वह जातक प्ररिव्राजक होकर भी अदीक्षित (दीक्षा रहित) ही रहता हुआ उसका भक्त बना रहता है । एवं यदि प्रव्रज्याकारक ग्रह दूसरे बली ग्रहों से पराजित हो अथवा अन्य ग्रहों से दृष्ट हो तो प्रार्थना करते रहने पर भी दीक्षा प्राप्त नहीं कर पाता है ।। १३ ।।

इति प्रव्रज्यायोगनिरूपणम् ।

राशिफलनिरूपणम्

चर-स्थिर-द्विस्वभाव राशिजात फल

अस्थिरविभूतिमित्रं चलनमटनं स्खलितनियममपि चरभे ।
स्थिरभे तद्विपरीतं क्षमान्वितं दीर्घसूत्रं च ।।१।।
द्विशरीरे तद्विपरीतं कृतज्ञमुत्साहितं विविधचेष्टम् ।
ग्राम्यारण्यजलोद्भवराशिषु विद्याच्च तच्छीलान् ।।२।।

अस्थिरेति। अथ राशिशीलनिरूपणम्। अस्थिरविभूतिम् अनियतविभूतिम् अस्थिरमित्रं चञ्चलं कर्मस्वनवस्थितम्, अटनं परिभ्रमणशीलं स्वस्खलितनियमं चलितव्रतं एवंविधं चरराशौ स्थिते चन्द्रे जातं भवति। स्थिरभे तद्विपरीतमिति। स्थिरमित्रं अचलं नटनं नो स्खलितनियमं न केवलमेतत् क्षमान्वितं दीर्घसूत्रं चिरेण कार्यानुष्ठानं एवंविधं स्थिरराशौ चन्द्रे जातं भवति। द्विशरीरे त्यागयुक्तम्। दातारं कृतज्ञं प्रसिद्धं उत्साहितमुत्थानशीलं विविधचेष्टमनेकक्रियकारिणं एवंविधं द्विस्व- भावराशौ चन्द्रे विद्यात्। ग्राम्यारण्येति। ग्राम्यराशयो मिथुनकन्यातुलाकुम्भाः धन्विपूर्वार्द्धम् एतेषामन्यतमस्थे चन्द्रमसि जाता ग्रामशीला भवन्ति, ग्रामशीला ग्रामप्रिया अरण्यसलिलभीरवः। अरण्या मेषवृषसिंहाः धनुः पश्चिमार्धं मकरपूर्वा- र्द्धमत्र जाता अरण्यप्रिया भवन्ति ग्रामसलिलभीरवश्च। जलोद्भवाः कर्कमीन-मकरान्त्यभागा एतेषामन्यतमस्थे चन्द्रमसि जाता जलप्रिया भवन्ति, ग्राम्यारण्य-भीरवश्च। वृश्चिकस्थे चन्द्रमसि जाता ग्राम्यारण्यशीला भवन्ति ।।१-२।।

जन्म के समय यदि चन्द्रमा चर राशि में हो तो क्षणिक ऐश्वर्य, क्षणिक मैत्री, चंचल प्रकृति, भ्रमणशील एवं अपनी प्रतिज्ञा से विमुख रहने वाला होता है। यदि चन्द्रमा स्थिर राशि में हो तो चर राशिस्थ फल के विपरीत फल देता है, अर्थात् अचल सम्पत्ति वाला, स्थिर मैत्री वाला, स्थिर स्वभाव, अपने नियम पर चलने वाला, क्षमाशील एवं धीरे-धीरे कार्य करने वाला (दीर्घसूत्री) होता है । द्वि:स्वभाव राशि में चन्द्रमा हो तो जातक ग्रामीण जीवन-यापन करने वाला, चतुष्पद राशिगत चन्द्रमा हो तो जंगली (जंगल में रहने वाला) तथा जलचरस्थ

राशिगत चन्द्रमा हो तो जलप्रिय होता है । तथा वृश्चिक राशि में उत्पन्न जातक को ग्राम और जंगल दोनों प्रिय होते हैं ।। १-२ ।।

चन्द्रमा पर दृष्टि का फल

क्षेत्राधिपसन्दृष्टे शशिनि नृपस्तत्सुहृद्भिरपि धनवान् ।
द्रेष्काणांशकपैर्वा प्रायः सौम्यैः शुभं नाऽन्यैः ।।३।।

क्षेत्राधिपेति। अथ दृष्टिफलविचारम्—यस्मिन् राशौ स्थितः चन्द्रस्तद्राशीश्वरेण दृष्टश्चन्द्र- स्तत्कालजातः पुमान् राजा स्यात्। अथ चन्द्राक्रान्तराशिस्तस्याधिपमित्रेण दृष्टे चन्द्रे सञ्जातो धनवान् भवति। अर्थादेव क्षेत्राधिपशत्रुणा दृष्टे चन्द्रे दरिद्रो भवति। क्षेत्राधिपमध्यदृष्टिर्निष्फला भवति। द्रेष्काणांशकपैरिति—यस्मिन्द्रेष्काणे चन्द्रो व्यवस्थितः तस्य द्रेष्काणस्य स्वामिना दृष्टे जातो धनी भवति। अत्रांशकग्रहणे नवांशकेति सर्वांशकग्रहणम्। यस्मिन्नवांशे द्वादशांशे त्रिंशांशे स्थिते चन्द्रे तेषां स्वामिभिश्च दृष्टे जातो धनी भवति। अर्थादेव द्रेष्काणांशस्वामी शत्रुभिर्दृष्टे चन्द्रे निर्धन इति। तन्मध्यदृष्टिर्निष्फलप्राया। सौम्यैरिति। क्षेत्राधिपो द्रेष्काणांशकपतिश्च यदि शुभग्रहो भवति तदा शुभकृद् भवति । अथाशुभोऽपि शुभकृत् किन्तु प्रायोग्रहणाद् शुभोऽपि फलदो भवति। पापग्रहः किञ्चित्फलदः। यस्माद् बृहज्जातके पापानामपि क्षेत्रपानां दृष्टिफलं शुभमुक्तं न केवलं यावदन्येश्वरः स भवति ।।३।।

जन्म-समय जिस राशि में चन्द्रमा स्थित हो उस पर यदि उसके स्वामी की दृष्टि हो तो जातक राजा होता है । या चन्द्रमा पर राशि-स्वामी के मित्र की भी दृष्टि हो तो धनवान् होता है । जिस द्रेष्काण, नवांश द्वादशांश या त्रिंशांश में चन्द्रमा हो और उसके स्वामी शुभ ग्रह हों तो दृष्टि मात्र से शुभ और पापग्रह हों तो सामान्य होता है ।। ३ ।।

भावों का शुभाशुभत्व

पुष्णन्ति शुभा भावान्मूर्त्यादीन् घ्नन्ति संस्थिता: पापा: ।
सौम्या: षष्ठेऽरिघ्ना: सर्वेऽरिष्टा व्ययाष्टमगा: ।।४।।

पुष्णन्तीति। भावफलविचातम्—लग्नादारभ्य तन्वादयो भावास्तत्र यस्मिन् भावे शुभग्रहा: व्यवस्थिता: तं भावं पुष्णन्ति वृद्धिं कुर्वन्ति। यस्मिन् भावे पापग्रहा व्यवस्थितास्तद्भावहानिकरा:। सौम्या इति-षष्ठेऽरिघ्ना: सौम्या: षष्ठस्थानस्था: शत्रुनाशकरा: भवन्ति पापा अवश्यमेवेति। सर्वे नेष्टा व्ययाष्टमगा: पापा: सौम्याश्च कर्मवृद्धिं कुर्वन्ति षष्ठग्रहणमत्रोपचयस्थानोपलक्षणार्थं तेन तृतीयस्था: सौम्या: पापाश्च सहजवृद्धिं कुर्वन्ति, दशमस्था: सौम्या: पापाश्च कर्मवृद्धि कुर्वन्ति, एकादशस्था सौम्या: पापाश्चायवृद्धि कुर्वन्ति। यदुवतं—'उपचयवर्ज्य सौम्यैर्यत्तत्पापैर्विपर्यस्तम्'।।४।।

जिस भाव में शुभग्रह रहता है, उस भाव (तन्वादि भाव) के लिये वृद्धिकारक (शुभकारक) एवं जिस भाव में पापग्रह रहता है वह भाव अशुभकारक होता है । षष्ठभावस्थ शुभग्रह भी शत्रु जा नाश ही करता है । द्वादशस्थ और अष्टमस्थ ग्रह (शुभग्रह-पापग्रह) अनिष्टकारक ही होता है।। ४।।

लग्नगत चन्द्र-फल

कर्कवृषाजोपगते चन्द्रे लग्ने धनी सुरूपश्च ।
विकलाङ्गजडदरिद्रा: शेषेषु विशेषत: कृष्णे ।।५।।

कर्कवृषेति। चन्द्रमसो लग्नगतस्य फलमाह—कर्कराशौ लग्नगते वृषे मेषे च लग्नगते तत्स्थे चन्द्रे जातो धनी सुरूपश्च कर्कवृषमेषान् वर्जयित्वा शेषराशौ लग्नगते चन्द्रे कृष्णपक्षे विशेषतोऽत्यर्थं विकलाङ्गजडदरिद्राणां जन्म भवति ।।५।।

जन्म समय कर्क, वृष या मेषराशिगत चन्द्रमा यदि लग्न में हो तो जातक धनवान् और सुरूपवान् होता है । इससे भिन्न राशिस्थ चन्द्रमा लग्न में हो तो जातक विकलाङ्ग, मूर्ख एवं धनहीन (दरिद्र) होता है । कृष्णपक्ष हो तो विशेषरूपेण, मूर्ख और धनहीन होता है ।। ५ ।।

लग्नगत सूर्य और द्वादशस्थ रवि-चन्द्र फल

विकलेक्षणोऽर्कलग्ने तैमिरिकोऽजे स्वभे तु रात्र्यन्धः ।
बुद्बुद्दृष्टिः कर्किणि काणो व्ययगे शशाङ्के वा ।।६।।

विकलेक्षण इति। अर्कस्य लग्नगतस्य चन्द्रार्कयोश्च लग्नाद् द्वादशस्थानयोर्विशेषमाह–मेषसिंहकर्कटान् वर्जयित्वाऽन्यस्मिन् राशौ लग्नगते तस्मिन् चार्के स्थिते विकलेक्षणो भवति। मेषराशौ लग्नगते तत्रैव चार्के स्थिते जातस्तैमिरिको भवति। तिमिराहतदृष्टिः, सिंहे लग्नगते तत्र चैवार्के स्थिते जातो रात्र्यन्धो भवति। कर्किणि लग्नगते तत्रैव चार्के स्थिते जातो बुद्बुद्दृष्टिर्भवति पुष्पिताक्षः। काणो व्ययगे शशाङ्के वा। लग्नगते द्वादशेऽर्के जातः काणो भवति चन्द्रे वा द्वादशे काणः। यद्यपि सामान्येनोक्तं तथापि आदित्ये व्ययगते दक्षिणाक्ष्णाकाणः चन्द्रे व्ययगते वामाक्षिकाणः। उक्तं च—'व्ययगतश्चन्द्रो वामं हिनस्त्यपरं रविः' इति ।।६।।

जन्म समय सूर्य यदि लग्नस्थ हो तो जातक आँख से कमजोर (क्षीणदृष्टि), लग्नस्थ सूर्य मेष राशि में हो तो तिमिर (रतौंधी) रोग से युक्त, सिंह राशि में हो तो रात में अन्धा, कर्क में हो तो फूली सहित आँखों वाला होता है एवं द्वादशस्थ सूर्य या चन्द्रमा हो तो जातक एक आँख का काना होता है।।६।।

विशेष–सूर्य द्वादश भाव में हो तो दक्षिण नेत्रहीन एवं चन्द्रमा हो तो वाम नेत्रहीन समझना चाहिये ।

भावफल में न्यूनाधिकता—

इष्टं पादविवृद्धया मित्रस्वगृहत्रिकोणतुङ्गेषु ।
रिपुभेऽल्पं फलमर्कोपगतस्य पापं शुभं नैव ।।७।।

इष्टमिति। भावफलम्–तद्द्विविधं शुभमशुभं च। तत्र यद्भावफलं शुभं तस्य फलस्य मित्रक्षेत्रस्थो ग्रहः पादं चतुर्थांशं प्रयच्छति। स्वगृहस्थोऽर्धम्। त्रिकोणस्थः पादहीनम्। तुङ्गः उच्चस्थः सर्वम्। रिपुभेऽल्पमिति रिपुक्षेत्रस्थः पादादप्यल्पम्। अर्कोपगताऽस्तङ्गतो न किञ्चिदपि नीचस्थश्च। एवं शुभफलं प्रयच्छन्ति। पापफलमेवं तत्र पापस्य फलस्य शुभफलेन व्याक्षेपः। तत्रास्तमितो

नीचस्थश्चाशुभं सम्पूर्णं फलं ददाति, शत्रुक्षेत्रस्थः पादोनं मित्रक्षेत्रस्थोऽर्द्धं स्वगृहस्थः पादं त्रिकोणस्थः पादादल्पम् उच्चस्थानस्थो न किञ्चिदपि ।।७।।

जो ग्रह अपने मित्र, अपने गृह, अपने मूल-त्रिकोण और अपने उच्च में हो तो उसका शुभ भावफल क्रमशः १, २, ३, और चारों (४) चरण से (सम्पूर्ण) शुभ होता है । एवं शत्रुराशिगत हो तो एक चरण से भी अल्प और जो ग्रह सूर्य सान्निध्य से अस्त हो तो उसका शुभभावफल कुछ भी नहीं होता है, तथा पापफल पूर्ण होता है । कहने का अभिप्राय यह है कि भावज अशुभफल इससे उल्टा समझना । अर्थात् नीचगत और अस्तादि ग्रह पापफल पूर्ण, शत्रु राशिगत हों तो ३ चरण, अपने मित्र की राशि में हो तो २ चरण, अपनी राशि में १ चरण, अपने मूल-त्रिकोण में १ चरण से भी अल्प और अपने उच्च में पड़ा हुआ ग्रह शून्य अशुभ फल देता है ।। ७ ।।

इस प्रकार भारती-हिन्दीटीकासहित लघुजातक में प्रकीर्णाध्यायान्तर्गत राशिफल का निरूपण समाप्त ।।

आश्रययोगनिरूपणम्—

मेषादि नवांशजातफल—

तस्करभोक्तृविचक्षणधनिनृपतिनपुंसकाऽभयदरिद्राः ।
खलपापोग्रोत्कृष्टा मेषादीनां नवांशभवाः ।।१

तस्करेति। अथाश्रयनिरूपणं चाह–तत्रादावेव नवांशजातस्य स्वरूपमाह–यस्मिन् कस्मिन् राशौ लग्नगते मेषनवांशे जातस्तस्करो भवति। वृषनवांशके जातो भोक्ता, मिथुननवांशे जातो विचक्षिणः, कर्कनवांशे जातो धनी, सिंहनवांशे जातो राजा, कन्यानवांशके जातो नपुंसकः, तुलानवांशके जातः शूरः, वृश्चिकनवांशके जातो दरिद्रो भवति। धन्विनवांशके जातः खलो दुष्टो भवति। मकरनवांशके जातः पापो भवति। कुम्भनवांशके जात उग्रो भवति क्रूर इत्यर्थः। मीननवांशके जात उत्कृष्टो भवति ।।१ ।।

जिस किसी भी लग्न में मेष का नवांश हो तो जातक चोर, वृष का हो तो भोगी, मिथुन का हो तो पण्डित, कर्क से धनवान, सिंह से राजा, कन्या से नपुंसक, तुला से निर्भय, वृश्चिक से दरिद्र, धनु से दुष्ट, मकर से पापी, कुम्भ से क्रूर (हिंसक) और मीन का नवांश हो तो जातक को अतिश्रेष्ठ (नृपतुल्य) समझना ।। १ ।।

विशेष–उक्त मेषादि नवांशजात फल जो कहे गये हैं, वे वर्गोत्तम से भिन्न में समझना । अर्थात् यदि वर्गोत्तम नवांश हो तो जातक इन सबका अधिपति होता है । यथा बृहज्जातक में कहा भी है—

''वर्गोत्तमांशेष्वेषामीशा" इससे सिद्ध होता है कि यदि मेषलग्न में मेष का ही नवांश हो तो चोरों का राजा, वृष का ही नवांश हो तो भोगियों में श्रेष्ठ इत्यादि ।

स्वगृह-मित्रगृहगत ग्रहों के फल—

कुलतुल्यकुलाधिकबन्धुमान्यधनिभोगिनृपसमनरेन्द्राः ।
स्वर्क्षगतैकविवृद्ध्या किञ्चिन्न्यूना सुहृद्गृहगैः ।।२।।

कुलतुल्येति। एकविवृद्ध्या स्वक्षेत्रगतैर्ग्रहैर्जातस्य स्वरूपमाह— यस्मिन् कस्मिन् राशौ ग्रहे स्वक्षेत्रे जातः स्वकुलसदृशो भवति। द्वयोः स्वक्षेत्रयोः स्वकुलाधिकः, त्रिषु बन्धुमान्यः, चतुर्षु धनी, पञ्चसु भोगी, षट्सु नृपसमः, सप्तसु राजा। किञ्चिन्न्यूनः सुहृद्गृहगैः एकस्मिन् भावे मित्रक्षेत्रगते ग्रहे परविभवोपजीवी, द्वयोः सुहृद्-विभवोपजीवी, त्रिषु जातिविभवोजीवी, चतुर्षु बन्धुविभवोपजीवी, पञ्चसु गणस्वामी, षट्सु बलस्वामी, सप्तसु राजा। उक्तं च—'परविभवसुहृत्स्व-बन्धुपोष्यागणबलेशनृपाश्च मित्रभेषु' इति ।।२।।

जन्म समय में यदि एक ग्रह स्वगृही हो तो जातक कुल (पितामह-पिता) के समान, २ ग्रह स्वगृही हों तो कुल में मुख्य, ३ से बन्धुओं में पूज्य, ४ से धनी, ५ से अत्यन्त सुख भोगी, ६ से नृपतुल्य और यदि सातों ग्रह स्वगृही हो तो जातक नरेन्द्र (राजा) होता है । इसी तरह का कुछ न्यून फल यदि एकादि ग्रह मित्रराशिगत हों तो समझना ।। २ ।।

विशेष–एक ग्रह मित्र राशि में हो तो दूसरे के धन से पोषित, २ से मित्रोपजीवी, ३ से स्वजाति द्वारा, ४ से बन्धुओं के द्वारा पालित, ५ से बहुतों का नायक, ६ से सेनापति और यदि सातों ग्रह मित्रराशिगत हों तो जातक राजा होता है । यथा–बृहज्जातक में कहा भी है कि—

''परविभवसुहृत्स्वबन्धुपोष्या गणपबलेशनृपाश्च मित्रभेषु ।''

स्वोच्चगत ग्रहों के फल—

त्रिप्रभृतिभिरुच्चस्थैर्नृपवंशभवा भवन्ति राजानः ।
पञ्चादिभिरन्यकुलोद्भवाश्च तद्वत्त्रिकोणगतैः ।।३।।

त्रिप्रभृतिभिरिति। यस्य जन्मनि त्रयो ग्रहाः उच्चगता भवन्ति स राजवंशजातस्तदा राजा भवति। यस्य चत्वारः सोऽपि राजवंशजो राजा भवति। यस्य जन्मनि पञ्च ग्रहा उच्चराशिगता भवन्ति स यदि अन्यकुलजातस्तदाऽपि

राजा भवति। यस्य षड्ग्रहाः स अन्यकुलजातोऽपि राजा भवति। यस्य सप्त ग्रहाः सोऽपि। एकेनोच्चगतेन द्वाभ्यां च राजवंशजो राजा न भवति किं तर्हि धनी भवति। तत्रापि यथा यथोच्चस्था ग्रहा भवन्ति तथा तथाधिको धनी तद्वत्त्रिकोणगतैरपि त्रिचतुर्भिर्मूलं त्रिकोणगतैः राजवंशजो राजा भवति। पञ्चषष्ठसप्तभिर्मूलत्रिकोणगतैरन्यवंशजोऽपि राजा भवति। अल्पैर्मूलत्रिकोणगैर्धनी भवति। यथा यथा बहवो ग्रहा मूलत्रिकोणस्था भवन्ति तथा तथाऽधिको धनी भवति ।।३।।

३ या ४ ग्रह यदि उच्च में हों तो राजकुल में जन्म लेने वाला राजा होता है । एवं यदि ५ से अधिक ग्रह उच्च में पड़े हों तो अन्य कुल के बालक भी राजा हो जाते हैं । इसी तरह का फल त्रिकोण (अपने मूल त्रिकोण) गत ग्रहों से भी समझना ।। ३ ।।

विशेष–अभिप्राय यह है कि-३ या ४ ग्रह के उच्च में होने से अन्य कुल के बालक राजा न होकर अत्यन्त धनिक होते हैं । इसी प्रकार त्रिकोण से भी समझना ।

नीचगत ग्रहों के फल—

निर्धनदुःखितमूढव्याधितबन्धाभितप्तवधभाजः ।
एकोत्तरपरिवृद्ध्या नीचगतैः शत्रुगृहगैर्वा ।।४।।

निर्धनदुःखितेति। अथैकादिभिर्नीचगतैर्गृहैर्जातस्य स्वरूपमाह— यस्मिन् कस्मिन् राशौ एकस्मिन् ग्रहे नीचगते शत्रुक्षेत्रगते वा जातो निर्धनो भवति द्वाभ्यां नीचगताभ्यां दुःखितः, त्रिभिर्मूढो विचेताः चतुर्भिर्व्याधितः, पञ्चभिर्वध्यः षड्भिरभितप्तवाक् सप्तभिर्वधभाग्भवति ।।४।।

जन्मकाल में यदि एक ग्रह नीच शत्रुराशि में हो तो जातक धनहीन, २ ग्रह हों तो दुःखित, ३ ग्रह से मूर्ख, ४ से व्याधिग्रस्त, ५ में बन्धन से दुःखी, ६ से अभितप्त (ताप से पीड़ित) एवं यदि सातों ग्रह शत्रुगृह में हो तो वधभागी होता है ।। ४ ।।

विशेष–सातों ग्रह एक समय में अपने नीच में नहीं हो सकते, किन्तु शत्रुराशि में रह सकते हैं । इस अभिप्राय से बृहज्जातक में वराहमिहिर कहे भी हैं–'वधदुरितसमेतः । अर्थात् ६ और ७ ग्रह का फल समान ही समझना ।

राजयोग—

एकोऽपि नृपतिजन्मप्रदो ग्रहः स्वोच्चगः सुहृद्दृष्टः ।
बलिभिः केन्द्रोपगतैस्त्रिप्रभृतिभिरवनिपालभवः ।।५।।

एकोऽपीति। अथ राजयोगं चाह—यस्य जन्मनि एकोऽपि ग्रहः स्वोच्चगः मित्रेण तत्काले दृष्टः नृपजन्मदो भवति। त्रयो ग्रहा बलयुताः केन्द्रगता भवन्ति स जातो राजा भवति। तत्र चत्वारश्च स राजा भवति। पञ्चादयो न गृहीतव्या यस्मात् पञ्चादिभिः केन्द्रगतैरबलवद्भिर्जातो राजा भवति। तत्रैव तज्जातं त्रिभिश्चतुर्भिर्वा स्वोच्चगतैर्न केवलं केन्द्रगतैर्बलवद्भी राजवंशे जातो राजा भवति ।।५।।

स्वोच्चगत एक भी ग्रह यदि अपने मित्र से दृष्ट हो तो बालक राजा होता है । तथा ३ या ४ बली केन्द्र स्थान में हो और बालक राजकुल का हो तो भी राजा कहना ।। ५ ।।

विशेष–कहने का तात्पर्य यह है कि–५ से अधिक ग्रह बली होकर केन्द्र में हो तो अन्य कुल का बालक भी राजा होता है । एवं यदि ५ से अधिक निर्बल ग्रह का केन्द्र नें रहता भी राजकुल में जन्म लेनेवाले के लिये राजा बनने का सूचक है ।

वर्गोत्तमगे चन्द्रे चतुराद्यैर्वीक्षिते विलग्ने वा ।
नृपजन्म भवति राज्यं नृपयोगे बलयुतदशायाम्।।६।।

वर्गोत्तमग इति। राजयोगान्तरमाह—यस्मिन् राशौ चन्द्रो व्यवस्थितः स चन्द्रो राशिसम्बन्धिबवांशके भवति तदा वर्गोत्तमस्थो भवति। यस्मिन् वर्गोत्तमगते चन्द्रे चतुराद्यैर्ग्रहैश्चतुःपञ्चषड्भिर्वीक्षिते तदा जातोऽन्यकुलजोऽपि राजा भवति। विलग्ने वा यस्य लग्नस्योदयस्तस्य चेत् स्वनवांशकोदयो भवति। तदा सलग्नो वगोत्तमस्थो भवति तस्मिन् लग्ने वर्गोत्तमगते चतुराद्यैर्ग्रहैः

चन्द्रवर्जितश्चतु:पञ्चषड्भिर्वीक्षितैर्यो जात: सोऽपि राजा भवति। तदुक्तं— 'वर्गोत्तमगते चन्द्रे अथवा चन्द्रवर्जिते। चतुराद्यैर्ग्रहैर्दृष्टे नृपवंशोद्भव: स्मृत:' ।। इति राज्यं नृपयोगे बलयुततद्दशायामिति। विद्यमाने राजयोगे बलयुतग्रहस्य दशायां तस्य राज्यप्राप्तिर्वक्तव्या ।।६।।

चन्द्रमा या लग्न यदि वर्गोत्तम नवांश में हो और चन्द्रमा को छोड़कर अन्य ४, ५ अथवा ६ ग्रहों से दृष्ट हो तो बालक राजा होता है । एवं योगकारक ग्रहों में बली ग्रह की दशान्तर्दशा में राज्य की प्राप्ति होती है ।। ६ ।।

विषय कथन—

उडुपतियोगसमागममशीलसन्दर्शनानि भावाश्च ।
आश्रयराज्यप्रभावाश्चाध्यायेऽस्मिन् क्रमेणोक्ता: ।।७।।

उडुपतियोगेति। अथ प्रकीर्णकाध्यायोक्तप्रकरणसङ्ग्रहमाह—इति। लघुजातकप्रकीर्णाध्याये—१. अनफासुनफादुरुधराकेमद्रुमाख्या राशियोगा:। २. द्विग्रहादि योगा: प्रव्रज्यायोगाश्च समागता:। ३. अस्थिरविभूतिमित्राद्यानि राशिशीलानि। ४. क्षेत्राधिपसन्दृष्ट इत्येवमाद्यानि सन्दर्शनानि। ५. पुष्णन्ति शुभा भावानित्येवमाद्या भावा:। ६. अंशकस्वरूपकिलतुल्याद्याश्च योगा:। ७. 'एकोऽपि नृपतिजन्मप्रद' इत्याद्या राजयोगा:। एतस्मिन् प्रकीर्णाध्याये क्रमेणोक्ता: ।।७।।

इस अध्याय (प्रकीर्णाध्याय) में चन्द्रयोग समागम (द्विग्रहयोग), दृष्टि फल, भाव फल, आश्रययोग, और राजयोग क्रमानुसार कहे गये हैं ।। ७ ।।

इस प्रकार भारती-हिन्दीटीकासहित लघुजातक में
प्रकीर्णाध्याय समाप्त ।। १२ ।।

अथ नाभसयोगाध्यायः ।। १३ ।।

रज्जु-मुसल और नलनामक (आश्रययोग)—

चरभवनादिषु सर्वैराश्रयजा रज्जुमुसलनलयोगाः ।
ईर्ष्युर्मानी धनवान् क्रमेण कुलविश्रुताः सर्वे ।।१।।

चरभवनादिष्विति। अथ नाभसयोगाध्यायं व्याख्यास्यामः। तत्र नाभसयोगाश्चतुर्धा आश्रययोगा दलयोगौ आकृतियोगाः सङ्ख्यायोगाश्च। तत्र आश्रययोगास्त्रयः, दलयोगौ द्वौ, आकृतियोगा विंशतिसंख्याः, संख्यायोगाः सप्त एवं द्वात्रिंशन्नाभसयोगाः। तत्राश्रययोगत्रयं तत्फलमाह—यदा सर्वे ग्रहाश्चरराशिगता भवन्ति, न केचित्, स्थिरराशिषु द्विःस्वभावेषु च भवन्ति तदा रज्जुनाम योगो भवति। यदा सर्वे ग्रहाः स्थिरराशिषु भवन्ति न कश्चिच्चरराशौ द्विःस्वभावराशौ वा भवन्ति तदा मुसलनामयोगो भवति। यदा सर्वे ग्रहाः द्विःस्वभावराशिषु भवन्ति न कश्चिच्चरराशौ न च स्थिरराशौ भवन्ति तदा नलयोगः। एषां फलान्याह—रज्जुयोगे जात ईर्ष्युः परममत्सरी भवति। मुसले जातो मानी गर्वितो भवति। नलाख्ये योगे जातो धनवान् भवति। क्रमेणैतानि फलानि कुलविश्रुताः। सर्वे आश्रययोगैः सर्वैर्जाताः कुलविश्रुताः कुलख्याताः। इत्याश्रययोगाः ।।१।।

सब ग्रह चरराशि में हों तो रज्जुयोग, सब स्थिर में हो तो मुसलयोग तथा यदि सब द्विस्वभावराशि में हों तो नलयोग होता है । रज्जुयोग में उत्पन्न बालक ईर्ष्यावान्, मुसल में अभिमानी और नलयोग में धनवान् होता है । विशेषता यह है कि इन तीनों ही योग में उत्पन्न मनुष्य अपने-अपने कुल में प्रसिद्ध होते हैं ।। १ ।।

सर्प और मालानामक (दलयोग)

केन्द्रत्रयगैः पापैः शुभैर्दलाख्यावहिश्चमाला च ।
सर्पेऽतिदुःखितानां मालायां जन्म सुखिनां च ।।२।।

केन्द्रत्रयगैरिति। अथ दलयोगौ स्वरूपमाह—येषु केषु त्रिषु केन्द्रेषु च यदा त्रयः पापग्रहा अर्कारसौरा भवन्ति न चैकस्मिन्नपि केन्द्रे सौम्यग्रहो भवति

तदा सर्पोनामदलयोगः। यदा येषु केन्द्रेषु सौम्यग्रहा बुधगुरुशुक्रा भवन्ति न कश्चित्केन्द्रे पापग्रहो भवति तदा मालानामदलयोगो भवति। तत्र योगद्वये चन्द्रमा न ग्राह्यः। फलमाह—सर्पेति। सर्पे योगे दुःखिनां जन्म भवति। मालायोगे सुखिनां जन्म भवति। इति दलयोगौ ।।२।।

किसी भी २ केन्द्र में तीनों पापग्रह (सूर्य, मङ्गल, शनि) हों और कोई शुभग्रह केन्द्र स्थान में न हो तो सर्प नामक योग होता है । तथा ३ केन्द्र में तीनों शुभग्रह (बुध, बृहस्पति, शुक्र) हों और कोई पापग्रह केन्द्र स्थान में न हो तो माला नामक योग होता है । ये दोनों योग दलयोग कहलाते हैं । मालायोग में भोगी और सर्पयोग में उत्पन्न जातक दुःखभागी होता है ।। २ ।।

विशेष–यहाँ केन्द्र स्थान में केवल शुभ या केवल पापग्रह से ही दलयोग समझना । यथा बादरायण—

''केन्द्रेष्वपापेषु सितज्ञजीवैः केन्द्रत्रिसंस्थैः कथयन्ति मालाम् ।
सर्पस्त्वसौम्यैश्च यमाऽरसूर्यैर्योगाविभौं द्वौ कथितौ दलाख्यौ ।।''

एवं दल योग में चन्द्रमा को शुभ और अशुभ दोनों से भिन्न समझकर छोड़ दिया गया है । कारण यह है कि चन्द्रमा में स्वाभाविक शुभत्व सर्वदा नहीं रहता, कभी क्षीणरश्मि रहने पर पापत्व को भी प्राप्त हो जाता है । तथा बुध शुभग्रह होते हुए भी पापसाहचर्य से पापी बन जाता है ।

गदा, शकट, विहंग-श्रृगाटक नामक आकृति योग

द्विरनन्तरकेन्द्रस्थैर्गदाविलग्नास्तसंस्थितैः शकटम् ।
खचतुर्थयोर्विहङ्ग श्रृङ्गाटकमुदयसुतनवगैः ।।३।।

द्विरनन्तरेति। अथाकृतियोगाः। तत्र गदाशकटविहङ्गश्रृङ्गाटकानां लक्षणं तत्फलोपनयं चाह—द्विरनन्तरेतिद्वयोः केन्द्रयोः यदा सर्वे ग्रहा भवन्ति तदा गदायोगो भवति स चतुर्धा। लग्नचतुर्थस्थैरेकः, चतुर्थसप्तमस्थैर्द्वितीयः, सप्तम-दशममस्थैस्तृतीयः, दशमलग्नस्थैश्चतुर्थः। विलग्नास्तसंस्थितैः शकटमिति—लग्ने सप्तमे च स्थाने यदा सर्वे ग्रहा भवन्ति तदा शकटाख्ययोगः। खचतुर्थयोर्विहङ्गः, दशमचतुर्थयोर्यदा सर्वे ग्रहा भवन्ति तदा विहङ्गयोगः।

श्रृङ्गाटकमिति—लग्ने पञ्चमे नवमे च यदा सर्वे ग्रहा भवन्ति तदा श्रृङ्गाटको योगो भवति ।।३।।

जन्म समय यदि किसी भी समीपवर्ती दो केन्द्रस्थानों में सम्पूर्ण ग्रह हों तो गदा योग, लग्न और सप्तम स्थान में सम्पूर्ण ग्रह हों तो शकट योग, चतुर्थ और दशम स्थान में सम्पूर्ण ग्रह स्थित हों तो विहंग योग तथा लग्न, पंचम और नवम (१।५।९) इन तीनों स्थानों में सम्पूर्ण ग्रह हों तो श्रृङ्गाटक योग होता है।।३।।

हलयोग और गदादि योगों के फल

श्रृङ्गाटकतोऽन्यगतैर्हलमेतेषां क्रमात् फलोपनयः ।
यज्वा शकटाजीवो दूतश्चिरसौख्यभाक्कृषिकृत् ।।४।।

श्रृङ्गाटक इति। लग्नं वर्जयित्वा यदान्यत्र स्थानत्रये परस्परं त्रिकोणगता ग्रहा भवन्ति तदा हलाख्योगः। स च त्रिधा। द्वितीयषष्ठदशमस्थैरेकः, तृतीयसप्तमैकादशस्थैर्द्वितीयः, चतुर्थाष्टमद्वादशगैस्तृतीयः। अथास्य योगपञ्चकस्य क्रमात् फलोपनयः। गदायोगे जातो यज्वा भवति। शकटयोगे शकटाजीवी, विहङ्गयोगे दूतः, श्रृङ्गाटके चिरसौख्यभाक्, हलाख्ये कृषिकृत्।।४।।

पूर्व श्लोक में लग्न से त्रिकोण में श्रृङ्गाटक योग कहा गया है । इससे भिन्न अर्थात् द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ स्थान से त्रिकोण में सभी ग्रह हों तो हल नामक योग होता है । गदा योग में उत्पन्न जातक याज्ञिक (यज्ञ करने वाला), शकट योग में उत्पन्न जातक शकट (गाड़ी) से जीवकोपार्जन करने वाला, विहंग योग में उत्पन्न जातक दूत, श्रृङ्गाटक योग में उत्पन्न जातक सर्वदा सुखी और हल योग में उत्पन्न जातक कृषक (कृषि-कर्म करने वाला) होता है ।। ४ ।।

विशेष–सम्पूर्ण ग्रह यदि २।६।१० या ३।७।११ या ४।८।१२ स्थानों में स्थित हों तो हल नामक योग समझना चाहिये ।

वज्र, यव, कमल और वापी योग

क्रूरैः सुखकर्मस्थैः सौम्यैरुदयास्तसंस्थितैर्वज्रम् ।
यव इति तद्विपरीतैर्मिश्रैः कमलं च्युतैर्वापी ।।५।।

अथ वज्रयवकमलवापीयूपशरशक्तिदण्डयोगानां लक्षणं फलानि चाह—**क्रूरैरिति।** चतुर्थदशमस्थैः सर्वैः पापग्रहैः लग्नसप्तमस्थैश्च सौम्य-ग्रहैर्वज्रयोगः। वज्रविपरीतस्थैर्यवः। एतदुक्तम्। चतुर्थदशमयोर्यदा सर्वे सौम्यग्रहा भवन्ति लग्नसप्तमगाश्च पापा भवन्ति तदा यवाख्यो योगः। मिश्रैः कमलमिति। वज्रयोगोक्तस्थानं विना सर्वे एव ग्रहा यदा चतुर्षु केन्द्रस्थानेषु भवन्ति तदा कमलयोगः। च्युतैर्वापीति—एवं केन्द्रच्युतैः सर्वैरेव ग्रहैर्वापीयोगः। स च द्विधा–द्वितीयपञ्चाष्टमैकादशमस्थाः सर्वे भवन्ति तदैकः। यदि तृतीयषष्ठनवमद्वादशस्थाः सर्वे ग्रहास्तदा द्वितीयः ।।५।।

यदि जन्म-समय चतुर्थ और दशम में सभी पापग्रह (रवि, मंगल, शनि) हों अथवा लग्न और सप्तम भाव में सभी शुभग्रह (बुध, गुरु, शुक्र) हों तो वज्रयोग होता है । इससे विपरीत अर्थात् चतुर्थ और दशम में सभी शुभग्रह अथवा लग्न और सप्तम में सभी पापग्रह हों तो यवयोग होता है । यदि केन्द्र (१।४।७।१०) में पापग्रह और शुभग्रह साथ-साथ स्थित हों तो कमल योग तथा केन्द्र को छोड़कर सभी (शुभाशुभ) ग्रह पणफर या आपोक्लीम में हों तो वापीयोग होता है ।। ५ ।।

यूप,शर, शक्ति एवं दण्ड योग

लग्नादिकण्टकेभ्यश्चतुर्गृहावस्थितैर्ग्रहैर्योगाः ।
यूपेषुशक्तिदण्डा वज्रादीनां फलान्यस्मात् ।।६।।

लग्नादीति। लग्नादिकेन्द्रमादितः कृत्वा चतुगृहेषु यदा सर्वे ग्रहा भवन्ति तदा यूपेषुशक्तिदण्डाख्ययोगा भवन्ति। तद्यथा—लग्नद्वितीयतृतीयचतुर्थस्थैः सर्वग्रहैर्यूपाख्यो योगः। चतुर्थपञ्चमषष्ठसप्तमस्थैरिषुः, सप्तमाष्टमनवमदश-मस्थैः शक्तिः दशमैकादशद्वादशलग्नस्थैर्दण्ड इति ।।६।।

लग्न से चार स्थानों (१।२।३।४) में सभी ग्रह हों तो यूप योग, चतुर्थ से चार स्थानों (४।५।६।७) में सभी ग्रह हों तो इषु (शर) योग, सप्तम से चार स्थानों (७।८।९।१०) में सभी ग्रह हों शक्तियोग तथा दशम से चार स्थानों (१०।११।१२।१) में सभी ग्रह हों तो दण्डयोग होता है । वज्रादि आठ योगों के फल आगे के श्लोक में कहे गये हैं ।। ६ ।।

वज्रादि आठ योगों के फल

आद्यन्तयोः सुखयुतः सुखभाङ्मध्ये धनान्वितोऽल्पसुखः ।
त्यागी हिंस्रो धनवर्जितः पुमान् प्रियैर्वियुक्तश्च ।।७।।

आद्यन्तयोरिति। वज्रादीनां योगानां फलानि वक्ष्यमाणानि बाल्ये सुखी यौवने दु:खितो वार्धके पुनः सुखी एवंविधो वज्रयोगे जातो भवति। बाल्ये वार्द्धक्ये च दुखितः यौवने सुखी एवंविधो यवाख्ये योगे जातो भवति। धनान्वितः कमलाख्ये योगे जातो भवति। वापीसंज्ञके अल्पसुखी भवति। यूपाख्ये जातस्त्यागी भवति। इषुयोगे जातो हिंस्रो घातुको भवति। शक्तियोगे जातो धनवर्जितो भवति। दण्डाख्ये योगे जातः प्रियैः पुत्रादिभिर्वियुक्तो भवति ।।७।।

वज्रयोग में उत्पन्न जातक बाल्यावस्था एवं वृद्धावस्था में सुखी, यवयोग में उत्पन्न मध्यावस्था (युवावस्था) में सुखी, कमलयोग में धनवान् वापी योग में अल्प सुखी, यूप योग में दानी (त्यागी), इषु (शर) योग में हिंसा करने वाला (हिंस्रक), शक्तियोग में दरिद्र (धन-हीन) एवं दण्डयोग में बन्धुओं से रहित होता है ।। ७ ।।

नौ, कूट, छत्र, चाप और अर्धचन्द्र योग

तद्वत् सप्तमसंस्थैर्नौकूटच्छत्रकार्मुकाणि स्युः ।
नावाद्यैरप्येवं कण्टकान्यस्थैः स्मृतोऽर्धशशी ।।८।।

अथ नौकूटच्छत्रकामुकार्धचन्द्राणां लक्षणमाह—**तद्वत्सप्तमसंस्थैरित्यादि।** एकस्मात् केन्द्रादारभ्य सप्तभिर्ग्रहैः सप्तमर्क्षस्थैश्च चत्वारो नौकूटच्छत्रकार्मुकाख्या योगा भवन्ति। लग्नद्वितीयतृतीयचतुर्थपञ्चमषष्ठ-सप्तमगैः सर्वग्रहैर्नौकाख्यः। चतुर्थादिदशमान्तस्थैर्कूटाख्यः। सप्तमादिलग्नान्त-

स्थैश्छत्राख्य:। दशमादिचतुर्थान्तस्थैश्चापाख्य:। नावाद्यैर्योगै: कण्टकान्यसंस्थैर्यदा पणफरापोक्लिमादिषु वा सप्तभिर्निरन्तरगतैरर्धचन्द्राख्यो योगो भवति। स चाऽष्टधा तद्यथा द्वितीयाद्यष्टमान्तेष्वेकस्तृतीयादिनवमान्तेषु द्वितीय:। पञ्चमाद्येकादशान्तेषु तृतीय:। षष्ठादिद्वादशान्तेषु चतुर्थ:। अष्टमादिद्वितीयान्तेषु पञ्चम:। नवमादितृतीयान्तेषु षष्ठ:। एकादशादिपञ्चमान्तेषु सप्तम:। द्वादशादिषष्ठान्तेषु अष्टम: ।।८।।

जिस प्रकार यूप आदि योग कहे गये है, उसी प्रकार लग्नादि सप्त गृहों (१।२।३।४।५।६।७) में सभी ग्रह हों तो नौकायोग, चतुर्थादि सप्त गृहों (४।५।६।७।८।९) में सभी ग्रह हों तो कूटयोग, सप्तमादि सात गृहों (७।८।९।१०।११।१२।१) में सभी ग्रह हों तो छत्रयोग, दशमादि सात गृहों (१०।११।१२।१।२।३।४) में सभी ग्रह हों तो चाप (कार्मुक) योग होता है। इसी तरह पणफर या आपोक्लिम से लगातार सात गृहों में सभी ग्रह हों तो अर्धचन्द्र योग होता है ।। ८ ।।

चक्र और समुद्र योग

एकान्तरैर्विलग्नात् षड्भवनावस्थितैर्ग्रहैश्चक्रम् ।
अर्थाच्च तद्वदुदधिनौप्रभृतिफलान्यथो क्रमश: ।।९।।

एकान्तरैरिति। अथ चक्रसमुद्रयोगयोर्लक्षणमाह—लग्नादारभ्यैकान्तरावस्थितैर्ग्रहै: षट्सु चक्राख्यो योगो भवति। तद्यथा—लग्नतृतीयपञ्चमसप्तमनवमैकादशेषु षट्सु यदा सर्वे ग्रहा: भवन्ति तदा चक्राख्यो योग अर्थात् द्वितीयादारभ्यैकान्तरावस्थितै: सप्तभिर्ग्रहै: षट्सु उदधिर्नाम योगो भवति। तद्यथा द्वितीयचतुर्थषडष्टदशमद्वादशेषु षट्सु ग्रहेषु यदा सप्त ग्रहा भवन्ति तदा उदधियोगो भवति ।।९।।

यदि लग्न से एकान्तर (१।३।५।७।९।११) इन छ: स्थानों में सभी ग्रह हों तो चक्रयोग एवं द्वितीय भाव से लेकर छ: सम भावों (२।४।६।८।१०।१२) में सभी ग्रह हों तो समुद्र नामक योग होता है । नौकादि सात योगों के फल अग्रिम श्लोक में कहे गये हैं ।। ९ ।।

नौकादि सात योगों के फल

कीर्त्या युक्तोऽनृतवाक् स्वजनहितः शूरसुभगधनीभूपाः ।
इत्याकृतिजा योगा विंशतिरात्मगुणैस्तेषु नन्दन्ते ।।१०।।

कीर्त्येति। नौप्रभृतीनां फलान्याह—नौयोगे जातः कीर्त्या युक्तो भवति। कूटयोगे जातोऽनृतवाक्। असत्यभाषी भवति। छत्रयोगे जातः स्वजनहितो भवति। कार्मुकयोगे जातः शूरो भवति। अर्धचन्द्रे जातः सुभगो भवति। चक्रयोगे जातो धनी भवति। समुद्रयोगे जातो राजा भवति। आकृतियोगोपसंहारार्थमाह—आकृतियोगा विंशतिः प्रोक्ताः। एषामन्यतमेन जाता आत्मगुणैर्नन्दन्ते स्वबाह्वर्जितश्रियो भवन्तीत्यर्थः ।।१०।।

नौकायोग में उत्पन्न जातक यशस्वी, कूटयोग में मिथ्याभाषी (झूठ बोलने वाला), छत्रयोग में अपने परिवार का भरण-पोषण करने वाला, शरयोग में योद्धा (वीर), अर्धचन्द्र योग में सुरूपवान्, चक्रयोग में धनवान् और समुद्रयोग में उत्पन्न राजा होता है । गदा आदि २० आकृतियोग हैं । इन आकृतियोगों में उत्पन्न जातक अपने गुणों से आनन्दित रहते हैं । अर्थात् अपने बल से अर्जित विभव को प्राप्त करते हैं और सुख भोगते हैं ।। १० ।।

गोल आदि सात संख्या योग

एकादिगृहोपगतैरुक्तान् योगान् विहाय सङ्ख्याने ।
गोल-युग-शूल-केदार पाश-दामाख्य-वीणाः स्युः ।।११।।

एकादीति। अथ सप्तसाङ्ख्यायोगानाह—एकादिगृहोपगतैरित्यादि। उक्तयोगान् रज्जुमुसलादिसमुद्रान्तान् योगान् वर्जयित्वा यदेकस्मिन् राशौ सर्वे ग्रहा भवन्ति तदा गोलाख्यो योगो भवति। यदा राशिद्वये तदा युगाख्यः, यदा राशित्रये तदा शूलाख्यः, यदा राशिचतुष्के तदा केदाराख्यः, यदा राशिपञ्चके तदा पाशाख्यः, यदा राशिषट्के तदा दामाख्यः। यदा राशिसप्तके तदा वीणायोगो भवति ।।११।।

पूर्व कथित आकृति योगों को छोड़कर यदि सभी ग्रह एक राशि (एक स्थान) में हों तो गोलयोग, दो राशि में सभी ग्रह हों तो युगयोग, तीन राशियों में

सभी ग्रह हों तो शूलयोग, चार राशियों में सभी ग्रह हों तो केदारयोग, पाँच राशियों में सभी ग्रह हों तो पाशयोग, छः राशियों में सभी ग्रह हों तो दामयोग और सात राशियों में सभी ग्रह हों तो वीणायोग होता है । ये सातों सांख्यवाचक योग हैं ।। ११ ।।

गोल आदि योगों के फल

दु:खितदरिद्रघातककृषिकरदु:शीलपशुपतिनिपुणानाम् ।
जन्म क्रमेण सुखिन: परभाग्यैस्सर्व एवैते ।।१२।।

दु:खितेति। साङ्ख्यायोगजातानां फलान्याह—गोलाख्ये योगे दु:खितानां जन्म भवति। युगाख्ये दरिद्रस्य। शूलाख्ये योगे घातकस्य, घातको वधकारी। केदाराख्ये कर्षकस्य। पाशाख्ये दु:शीलस्य। दामाख्ये पशुपालस्य। वीणायां निपुणस्य। एवं विधानां जन्म क्रमेण। साङ्ख्ययोगे जाता: सर्व एव अन्यवित्तसुखिनो भवन्ति। अथैकस्मिन् राशौ चरे स्थिरे द्वि:स्वभावे वा यदा सर्वे ग्रहा भवन्ति तदा रज्जुमुसलनलादियोगानां मध्ये अन्यतमो योगो भवति। यद्यप्युक्तयोगान् विहायेति। तथापि साङ्ख्ययोगा: निरवकाशा:। अत: 'निरवकाशादिविधय: सावकाशान् विधीन् बाधन्ते, इति न्यायेन सङ्ख्यायोगेन आश्रययोगोऽत्र बाध्यते यस्माद् गोलस्यान्य उपाय एव नास्ति तथा दलयोगाकृतियोगयो: समकाले उपस्थानं नास्ति तथा दलयोगाश्रययोगयोरपि नास्ति। अथ दलयोगै: साङ्ख्ययोगा युज्यन्ते। तथापि दलयोगप्राबल्यं तथाकृतियोगा आश्रययोगै: युज्यते तदा आकृतियोगफलं भवति। साङ्ख्ययोगा आश्रययोगाश्च आकृतियोगैरभिभूयन्ते। आश्रययोगा: साङ्ख्ययोगा नाभसादि योगाश्च समाप्तदशास्वपि फलप्रदा भवन्ति ।।१२।।

गोल आदि योगों के फल क्रमश: इस प्रकार हैं–यदि किसी का जन्म गोलयोग में हो तो जातक दु:खी, युगयोग में उत्पन्न दरिद्र, शूलयोग में घातक, केदारयोग में कृषक (कृषि करने वाला) पाशयोग में दुष्ट स्वभाव वाला, दामयोग में पशु-पालन करने वाला, और वीणायोग में उत्पन्न जातक निपुण

(कार्य करने में कुशल) होता है तथा संख्यायोग में उत्पन्न जातक दूसरे के भाग्य से जीते (सुखादि का अनुभव करते) हैं ।। १२ ।।

विशेष–आकृति आदि योगों के लक्षण यदि संख्यायोग में घटित हों तो संख्यायोग नहीं समझना चाहिये, आकृति योग ही समझना चाहिये । चरादि राशियों के आश्रय होने से आश्रययोग, ग्रहों के शुभाशुभ भेद होने से दल योग, ग्रह योग से आकृत्यनुसार आकृतियोग तथा स्थान-संख्यानुसार संख्यायोग नामकरण किया गया है ।

इसी प्रकार भारती-हिन्दीटीकासहित लघुजातक में
नाभसयोगाध्याय समाप्त ।। १३ ।।

अथ स्त्रीजातकाध्यायः ।। १४ ।।

स्त्री के आधार तथा लक्षण—

स्त्रीपुंसोर्जन्मफलं तुल्यं किन्त्वत्र लग्नचन्द्रस्थम् ।
तद्बलयोगाद्वपुराकृतिश्च सौभाग्यमस्तमयात् ।।१ ।।

स्त्रीपुंसोरिति। अथ स्त्रीजातकाध्यायं व्याख्यास्यामः। तत्रादावेव पुरुषजन्मोक्तफलनिर्देशमाह—स्त्रीपुंसोर्जन्मफलं तुल्यं यादृशमेव पुरुषजातकं तादृशमेव स्त्रियाः। स्त्रीणां विशेषश्चन्द्राक्रान्तराशिवशेन लग्नवशेन च विचारणीयम्। किं तदित्याह—तद्बलयोगाद्वपुराकृतिः। चन्द्रवशाच्च लग्नवशाच्च वपुस्तस्या वक्तव्यम्। आकृतिश्च वक्तव्या। वपुः स्वरूपं आकृतिः संस्थानं स चेत् सौम्यग्रहयुक्तो भवति तदा सुभगा वाच्या। पापग्रहयुक्ते दृष्टे तस्मिन् दुर्भगेति वाच्यम् ।।१ ।।

पूर्व कथित समस्त योगजफल जो कहे गये हैं, वे स्त्री और पुरुष दोनों के लिए समान ही समझना । परञ्च स्त्री के लग्न और चन्द्राश्रित राशि के अनुसार उसकी आकृति-प्रकृति-गुण आदि समझना । तथा सप्तम स्थान से उसके पति और सौभाग्य आदि का विचार करना चाहिये ।। १ ।।

युग्मर्क्षे लग्नेन्द्वोः प्रकृतिस्था रुपशीलगुणयुक्ता ।
ओजे पुरुषाकारा दु:शीला दु:खिता चैव ।।२ ।।

युग्मर्क्ष इति। चन्द्रलग्नवशाद्वपुरित्येतदुक्तमिति तन्निर्देशार्थमाह— युग्मराशौ वृषादौ स्थिते चन्द्रमसि लग्ने वा जाता स्त्री प्रकृतिस्था भवति। स्त्रीरूपेत्यर्थः। रूपशीलगुणयुता भवति ओजे विषमराशौ मेषादौ स्थिते चन्द्रमसि लग्ने वा तस्मिन् जाता स्त्री पुरुषाकारा भवति। दु:शीला दु:खिता च भवति। अर्थादेव चन्द्रलग्नयोः एकस्मिन् युग्मराशिगते अन्यस्मिन् ओजराशिगते मध्यगुणा च भवति ।।२ ।।

यदि लग्न या चन्द्राश्रित राशि सम हो तो वह स्त्री स्त्रियों के ऐसे रूप-गुण-स्वभाव इत्यादि से युक्त और यदि विषम राशि हो तो पुरुषों के ऐसे आकार दुष्ट-स्वभाववाली और दु:ख भोगने वाली होती है ।। २ ।।

विशेष–लग्न और चन्द्रमा में एक सम और एक विषम राशि में हो तो मिश्रित स्वभाववाली समझना ।

पति सम्बन्धी विचार—

अबले सप्तमभवने सौम्येक्षणवर्जिते च कापुरुषः ।
भवति पतिश्चरभेऽस्ते प्रवासशीलो भवेद् भ्रान्तिः ।।३।।

अबल इति। तस्याः पतिस्वरूपमाह—लग्नात् सप्तमभवने बलहीने सौम्यग्रहदर्शनविवर्जिते च जातायाः तस्याः भर्ता कापुरुषो भवति नाम कुत्सितपुरुषो भवति। जन्मभवनात् सप्तमभवने चरराशिगते या जाता स्त्री तस्याः भर्ता परिभ्रमणशीलो भवति। स्थिरराशौ सप्तमस्थानगते नित्यं गृहस्थः द्विःस्वभावे सप्तमस्थानगते मिश्र इति ।।३।।

लग्न से सप्तभाव यदि ग्रह रहित हो, निर्बल हो और शुभग्रह से अदृष्ट हो तो ऐसे योग में उत्पन्न स्त्री का पति कुत्सित (नीच) स्वभाव वाला होता है । यदि चर संज्ञक राशियाँ स्त्री की कुण्डली में सप्तमभाव में पड़ी हों तो उस स्त्री का पति प्रवासशील (परदेश में भ्रमण करने वाला) होता है ।। ३ ।।

विशेष–कहने का तात्पर्य यह है कि यदि स्थिर राशि सप्तमभाव में हो तो उसका पति सर्वदा घर में ही निवास करनेवाला और यदि द्विस्वभाव राशि हो तो कभी परदेश में और कभी घर में रहनेवाला समझना ।

अशुभयोग—

बाल्ये विधवा भौमे पतिसन्त्यक्ता दिवाकरेऽस्तस्थे ।
सौरे पापैर्दृष्टे कन्यैव जारं समुपयाति ।।४।।

बाल्य इति। यस्या जन्म लग्नात् सप्तमेऽङ्गारको भवति सा बाल्ये एव विधवा भवति। सप्तमेऽर्के जाता या स्त्री सा पत्या सन्त्यज्यते। यस्या जन्मलग्नाच्छनैश्चरः सप्मते भवति स च पापग्रहदृष्टः वा कन्यैव सती अनूढैव जारं समुपयाति प्राप्नोति ।।४।।

स्त्री की जन्मकुण्डली में यदि सातवें भाव में मङ्गल हो तो बाल-विधवा, सूर्य हो तो स्वामी से त्यक्ता, शनि हो और उस पर कोई पापग्रह की दृष्टि हो तो वह कन्या बिना ब्याहे ही पर-पुरुष से सम्पर्क स्थापित कर चुकी होती है ।।४।।

विशेष–कहने का तात्पर्य यह है कि स्त्री की कुण्डली में सप्तमभाव में मङ्गल, रवि, शनि का रहना शुभ नहीं है, इस पर कोई पापग्रह की दृष्टि भी हो तो फलों में विशेषता अन्यथा शुभग्रह की दृष्टि से फल पूर्णरूप से नहीं होते, ऐसा समझना ।

ब्रह्मवादिनी योग—

सितकुजजीवेन्दुसुतैर्बलिभिर्लग्ने समश्च यदि राशिः ।
स्त्री ब्रह्मवादिनी स्यात् सुशास्त्रकुशला प्रतीता सा ।।५।।

सितकुजेति। येन योगेन जाता ब्रह्मवादिनी भूरिशास्त्रकुशला प्रतीता च भवति तदर्थमाह—यस्या जन्मनि लग्नगतः समराशिर्भवति। शुक्राङ्गारकगुरुबुधाश्च तस्मिन् बलिनो भवन्ति तदा जाता स्त्री ब्रह्मवादिनी मोक्षशास्त्रकुशला प्रतीता च भवति। प्रतीता विख्याता ।।५।।

स्त्री की जन्मकुण्डली में यदि सम (वृष, कर्क आदि) राशि लग्न हो तथा शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति, बुध से बलयुक्त हो तो वह स्त्री लोक में विख्यात, शास्त्र में निपुण और ब्रह्मविद्या को जानने वाली होती है ।। ५ ।।

विशेष—

पुञ्जन्मफलं यद्यन्न घटति वनितासु तत्तासाम् ।
वक्तव्यं राज्याद्यं वृषणविनाशादि वा पापम् ।।६।।

पुञ्जन्मफलमिति। अथ स्त्रियाः पुरुष-जन्मफलासम्भवे तद्भर्तुरिति आदेशार्थमाह—स्त्रीपुंसोर्जन्मफलं तुल्यमित्युक्तं। यत्र शुभमशुभं वा स्त्रियो न घटते न सम्भवतीत्यर्थः। यथा राज्याद्यं शुभं, पापं वा वृषणविनाशादिकं तत्र तस्या भर्त्तुर्वक्तव्यम्, एवमन्यान्यघटमानानि वेदितव्यानि ।।६।।

पुरुष जातक के कथित फल यदि स्त्री में घटित होने की सम्भावना न हो तो वे फल उसके पति में कहने चाहिये । तथा—युद्धादि द्वारा राज्य लाभ, गुप्ताङ्गादिक सम्बन्धी विचार इत्यादि ।। ६ ।।

इति लघुजातके स्त्रीकातकाध्याय: ।। १४ ।।

अथ निर्याणाध्यायः ।। १५ ।।

मृत्यु कारण ज्ञान—

सूर्यादिभिर्निधनगैर्हुतवहसलिलायुधज्वरामयज्ञः ।
क्षुत्तृट् कृतश्च मृत्युः परदेशे नैधने चरभे ।।१ ।।

सूर्यादिभिरिति। अथ निर्याणाध्यायं व्याख्यास्यामः। तत्रादौ सूर्यादिभिरष्टगैर्मृत्युज्ञानमाह—यस्य जन्मलग्नादष्टमस्थानेऽर्को भवति तस्याग्निहेतुको मृत्युर्भवति। यस्य चन्द्रोऽष्टमो भवति तस्य जलात्, यस्य भौमोऽष्टमो भवति तस्याऽऽयुधहेतुको मृत्युः। यस्य बुधोऽष्टमो भवति तस्य ज्वरहेतुको मृत्युः। यस्य गुरुरष्टमो भवति तस्यामयात्। आमयादजीर्णादिरोगतः। यस्य शुक्रोऽष्टमो भवति तस्य क्षुद्धेतुको मृत्युः। यस्य शनैश्चरोऽष्टमगो भवति तस्य तृड्ढेतुको मृत्युर्भवति। बहवो ग्रहाः अष्टमस्थानगता भवन्ति तदा यो बलवान् तद्धेतुको मृत्युर्भवति। एवं प्रकारे जाते दर्शनार्थज्ञानमाह—यस्य लग्नादष्टमो राशिश्चराख्यो भवति तस्य परदेशे मृत्युर्भवति अर्थाद्यस्य लग्नादष्टमः स्थिरराशिर्भवति तस्य स्वदेशे मृत्युः। यस्याष्टमो द्विःस्वभावराशिर्भवति तस्य मार्गे मृत्युर्भवति ।।१ ।।

लग्न से अष्टम स्थान में सूर्य हो तो अग्नि से मरण, चन्द्र हो तो जल से, मङ्गल हो तो अस्त्र-शस्त्रादि से, बुध हो तो ज्वर से, बृहस्पति हो तो अजीर्णादि रोग से, शुक्र हो तो तृषा (प्यास) से और शनि हो तो क्षुधा (भूख) हेतु से मरण समझना । यहाँ अष्टम भाव में यदि अनेक ग्रह हों तो उनमें जो बली हों उसके उक्त विषयक हेतु से मरण कहना । तथा अष्टम स्थान में चर संज्ञक राशि हो तो परदेश में, स्थिर हो तो घर में और यदि द्विस्वभाव हो तो मार्ग में मरण होता है।।१ ।।

विशेष–बृहज्जातक में शुक्र ओर शनि के लिए 'तृट्क्षुत' और लघुजातक में 'क्षुत्तट्' इस प्रकार के पाठ भेद के उपलक्ष्य ग्रन्थों में मिलने से लोगों को यह असङ्गत प्रतीत होता है । वास्तव में इससे किसी प्रकार की कोई

हानि नहीं कारण शुक्र और शनि दोनों से समान फल होने के कारण 'क्षुत्तृट्' या 'तृट्क्षुत्' दोनों पाठ सङ्गत ही हैं । जैसे भूख-प्यास दोनों ही प्रयोग होते हैं ।

यो वा निधनं पश्यति बलवांस्तद्धातुकोपजो मृत्युः ।
लग्नात् त्र्यंशपतिर्वा द्वाविंशः कारणं मृत्योः ।।२।।

यो वेति। यस्य लग्नादष्टमं स्थानं शून्यं ग्रहवर्जितं भवति तस्य मृत्युज्ञानमाह—यदा अष्टमस्थानं शून्यमादित्यः पश्यति तदा पित्तप्रकोपेण म्रियते। यदा चन्द्रः पश्यति तदा कफवातप्रकोपेण, भौमस्तदा पित्तप्रकोपेण, बुधश्च तदा वातपित्तश्लेष्मणां त्रयाणामपि प्रकोपेण, बृहस्पतिस्तदा कफप्रकोपेण, शुक्रस्तदा कफवातप्रकोपेण, शौरिस्तदा वातप्रकोपेण। यदा बहवो ग्रहाः अष्टमस्थानं पश्यन्ति तदा तेषां मध्ये यो बली भवति तस्य धातुकोपेन मृत्युर्भवति। यस्य जन्मन्यष्टमं स्थानं केनचिद्युतं दृष्टं न भवति तस्य मृत्युकारणज्ञानमाह—यस्य जन्मलग्नाद्यो लग्नत्र्यंशः द्रेष्काणः तस्माद् द्वाविंशो यो द्रेष्काणः तस्य योऽधिपतिस्तस्य यत्कारणमुक्तं हुतवहसलिलादि तत्कृतो मृत्युर्भवति ।।२।।

अथवा यदि अष्टमभाव ग्रह रहित हो तो ग्रह अष्टमभाव को देखे उस ग्रह के धातु (पूर्व ग्रहस्वरूपाध्याय में कहे गये कफ, पित्त, वात) के प्रकोप से मरण होता है । यदि अनेक ग्रह देखते हों तो उनमें जो बली हो उसके धातु से मरण समझना । कदाचित् उक्त योग भी न हो तो उस हालत में लग्न में जितने संख्यक द्रेष्काण हो उससे २२ वाँ द्रेष्काण का स्वामी मरण का कारण होता है ।। २ ।।

विशेष–अष्टम भाव यदि बहुत ग्रहों से युत-दृष्ट हो तो सर्व-धातु प्रकोप से मरण कहना । कहा भी है–

''यो बलयुक्तो निधनं पश्यति तद्धातुकोपजो मृत्युः ।
तत्संयुक्तस्तनुजो बहुबलिभिर्बहुप्रकारः स्यात् ।।"

मरणान्तर गतिस्थान ज्ञान—

सुरपितृतिर्यङ् नरकान् गुरुरिन्दुसितावसृग्रवी ज्ञयमौ ।
रिपुरन्ध्रत्र्यंशकपा नयन्ति चाऽस्तारिनिधनस्थाः ।।३।।

सुरपितृ-इति। लग्नात् स्वषष्ठस्थानस्थो ग्रहः स्वपठितां गतिं नयति। सप्तमस्थोऽष्टमस्थश्च। यदैते त्रिष्वपि तदा तेषां यो बलवान् स्वस्वपठितां गतिं नयति। अथ त्रीण्येतानि शून्यानि भवन्ति तदा पुरुषजन्मलग्नात् षष्ठे स्थाने यो द्रेष्काणस्तथाऽष्टमे तयोर्यावधिपती तयोर्यो बलवान् स स्वपठितां गतिं नयति। तत्र जन्मलग्ने प्रथमद्रेष्काणस्तदा षष्ठेऽपि राशौ प्रथमो भवति। अथ जन्मलग्ने द्वितीयस्तदा षष्ठेऽपि राशौ द्वितीयो भवन्ति। अथ जन्मलग्ने तृतीयः षष्ठे तृतीयः। एवं सप्तमाष्टमयोरपि न केवलं यावत्सर्वेष्वेव एवमपि नवांशकल्पना तत्र बृहस्पतिर्यदा गतिदायको भवति तदा देवलोके गतिं प्रयच्छति। चन्द्रशुक्रयोरन्यतमः पितृलोके गतिं प्रयच्छति। आदित्यभौमयोरन्यतमस्ति-र्यग्लोके गतिं प्रयच्छति। बुधशनैश्चरयोरन्यतमा नरकं प्रयच्छन्ति ।।३।।

जन्मलग्न से ६।७।८ स्थानगत ग्रहों में यदि बृहस्पति बली हो तो वह प्राणी देवलोक, चन्द्रमा या शुक्र हो तो पितृलोक, मङ्गल या सूर्य बली हो तो मर्त्यलोक और यदि बुध या शनि बली हो तो नरकगामी होता है । एवं यदि उक्त (६।७।८) भवनों में कोई ग्रह न हो तो षष्ठ और अष्टमभाव गत द्रेष्काण के स्वामीयों में जो बली हो उसका जो लोक कहा गया है, उस लोक में जाता है।।३।।

मोक्षयोग—

षष्ठाष्टमकण्टकगो गुरुरुच्चो भवति मीनलग्ने वा ।
शेषैरबलैर्जन्मनि मरणे वा मोक्षगतिमाहुः ।।४।।

षष्ठाष्टमेति। मोक्षयोगज्ञानमाह—यस्य जन्मनि लग्नात् षष्ठे स्थानेऽष्टमे वा केन्द्राणामन्यतमे वा बृहस्पतिर्भवति स चोच्चस्थो भवति तदा मोक्षो भवति। अथवा लग्नं मीनो भवति तत्र बृहस्पतिवर्ज्यमन्ये ग्रहा बलवर्जिता भवन्ति। तदा

जातस्य मोक्षो भवति। एवंविधे योगे मरणकाले मोक्षो भवति। तत्र जन्ममरणं तत्सर्वेषामपि गतियोगानां ज्ञातव्यम् ।।४।।

जन्मलग्न से ६।८।१।४।७।१० इन भवनों में यदि बृहस्पति उच्च (कर्क) का हो अथवा मीनलग्न में बृहस्पति हो और अन्य सब ग्रह बलहीन हों तो उस जातक को मोक्षलाभ होता है । इस प्रकार का योग यदि किसी के मरणकाल में भी हो तो मरणोपरान्त मुक्ति कहना ।। ४ ।।

पूर्वजन्म वृत्तान्त—

गुरुरुडुपतिशुक्रौ सूर्यभोमौ यमज्ञौ
विबुधपितृतिरश्चो नारकीयांश्च कुर्युः ।
दिनकरशशिवीर्याऽधिष्ठितत्र्यंशनाथाः
प्रवरसमनिकृष्टास्तुङ्गह्रासादनूके ।।५।।

गुरुरुडुपतीति। यो जातो जन्तुः स कस्माल्लोकादागत इति ज्ञानार्थमाह—आदित्यचन्द्रयोर्यो बलवान्स यस्मिन्द्रेष्काणे व्यवस्थितः तस्य द्रेष्काणस्य योऽधिपस्तस्य यो लोकस्तस्मादागत इति वक्तव्यम्। स यदि द्रेष्काणो गुरुसम्बन्धी भवति तदा देवलोकागत इति वाच्यम्। चन्द्रशुक्रयोरन्यतरसम्बन्धी चेद्भवति तदा पितृलोकादागत आदित्यभौमयोरन्यतरसम्बन्धी चेद्भवति तदा तिर्यग्लोकात्। बुधसौरयोरन्यतरसम्बन्धी चेद्भवति तदा नरकलोकादागतः। यस्माल्लोकादागतः तत्रापि श्रेष्ठमध्यहीनत्वमाह। यद्ग्रहदर्शितलोकाद्यस्य जन्म स चेद् ग्रहः स्वोच्चराशिस्थः तत्रासौ श्रेष्ठ आसीदिति ज्ञेयम्। अथोच्चराशिच्युतो नीचराशिमप्राप्यावस्थितस्तदासौ मध्यम आसीदिति ज्ञेयम्। अथ नीचराशिस्थितस्तदाधम आसीदिति ज्ञेयम् ।।५।।

सूर्य और चन्द्रमा इन दोनों में जो बलवान् होकर जिस द्रेष्काण में हो उस द्रेष्काण का जो स्वामी हो उसके कथित लोक से वह प्राणी आया है–ऐसा समझना । यदि वह द्रेष्काण बृहस्पति का हो तो देवलोक से, चन्द्रमा या शुक्र का हो तो पितृलोक से, सूर्य या मङ्गल का हो तो मर्त्यलोक से और बुध या शनि के द्रेष्काण का हो तो नरक से आया हुआ समझना । तत्तत्लोक से आये हुए का

ज्ञान कराने वाला जो द्रेष्काणपति है, वह यदि अपने उच्च का हो तो उत्तलोक में श्रेष्ठ था, उच्च और नीच दोनों मे मध्य में हो तो मध्यम श्रेणी में था और यदि नीच में हो तो निकृष्ट कोटि में था–ऐसा कहना ।। ५ ।।

इति लघुजातके निर्याणाध्याय: ।। १५ ।।

अथ नष्टजातकाध्यायः ।। १६ ।।

लग्न और जन्मेष्ट जानने के लिए लग्न और ग्रहों के गुणकाङ्क—

गोसिंहौ मिथुनाष्टमौ क्रियतुले कन्यामृगौ च क्रमात्
संवर्ग्या दशकाष्टसप्तविषयैः शेषाः स्वसङ्ख्यागुणाः ।
जीवारास्फुजिदैन्दवः प्रथमवच्छेषा ग्रहाः सौम्यव-
द्राशिनां नियतो विधिर्ग्रहयुतैः कार्या च तद्वर्गणा ।।१ ।।

गोसिंहाविति। तत्र प्रश्नकाले तात्कालिकलग्नं कृत्वा लिप्तापिण्डीकार्यम्। तत्र तस्य लिप्तापिण्डीकृतस्य गुणाकारविज्ञानार्थमाह—वृषलग्नगतं दशभिर्गुणयेत् सिंह च दशभिरेवं मिथुनमष्टभिर्वृश्चिकमप्यष्टभिः मेषं सप्तभिस्तुलामपि सप्तभिर्गुणयेत्। कन्या पञ्चभिः मकरमपि पञ्चभिः कर्कटलग्नगतं चतुर्भिर्गुणयेत्। धनुर्नवभिः कुम्भमेकादशभिः मीनं द्वादशभिरेव तावल्लग्नं स्वगुणाकारेणावश्यमेव गुणयेत्। लग्ने यदि ग्रहो भवति तत्र गुणाकारविधिः गुरौ लग्नगते दशभिर्गुणयेत्। भौमे लग्नगते अष्टभिः शुक्रे सप्तभिः बुधे पञ्चभिः शेषा आदित्यचन्द्रशनयस्तेषां प्रत्येकं पञ्चभिर्गुणाकार एवं तत्काललिप्तापिण्डीकृतं लग्नमवश्यं राशिगुणकारेण गुणयेत्। ततो ग्रहसम्भवे सति ग्रहोक्तगुणकारैरपि एवं गुणितमेकान्ते स्थापयेत् ।।१ ।।

लग्न में वृष या सिंह हो तो तो लग्न को कलात्मक बना कर १० से, मिथुन या वृश्चिक हो तो ८, से मेष या तुला हो तो ७ से, कन्या या मकर हो तो ५ से और शेष (कर्क-धनु-कुम्भ-मीन राशि) लग्न हो तो अपनी संख्या तुल्य (अर्थात् कर्क को ४ से, धनु को ९ से, कुम्भ को ११से, मीन को १२) से गुणाकर कलापिण्ड समझे । एवं लग्न में गुरु हो तो उस (कलापिण्ड) को १० से, मङ्गल हो तो ८ से, शुक्र हो तो ७ से, बुध हो तो ५ से और अन्य (सूर्य चन्द्र-शनि) हो तो ५ से गुणा करे । यदि कई ग्रह प्रश्नलग्न में पड़े हों तो सबों के गुणक से पुनः पुनः गुणा करने से स्पष्ट कलापिण्ड होता है ।। १ ।।

नक्षत्र का ज्ञान—

सप्ताहतं त्रिघनभाजितशेषमृक्षं
दत्वाऽथवा नव विशोध्य नवाऽथवा स्यात् ।
एवं कलत्रसहजात्मजशत्रुभेभ्यः
प्रष्टर्वदेदुदयराशिवशेन तेषाम् ।।२।।

सप्ताहतमिति। अथ नक्षत्रानयनमाह—प्राक् योऽसौ राशिः पृथक् स्थापितस्ततः सप्तभिर्गुणयेत् ततस्तत्र नवदेयाः शोध्या वा न किञ्चिद्वा कदोच्यते। यदा प्रश्नलग्ने प्रथमद्रेष्काणो भवति तदा नव देया। अथ द्वितीयस्तदा न देया न शोध्याः। अथ तृतीयस्तदा नव शोध्याः। एवं कृत्वा तस्य राशेः सप्तविंशत्या भागमाहरेत्। ततो यावत्संख्याकोऽवशेषो भवति तावत्संख्यमश्विन्यादितो यन्नक्षत्रं भवति तन्नक्षत्रं तस्य वाच्यम्। अथ पुरुषः स्वपत्न्या नक्षत्रं पृच्छति तदा तात्कालिके लग्ने राशिषट्कं दत्वा तस्य लग्नस्य लिप्तपिण्डीकृत्वाऽऽगतं राशिं गुणकारेण गुणयेत्। लग्ने ग्रहश्चेत्तद्गुणकारेण गुणयेत्। ततस्तस्य सप्तगुणस्य प्राग्वन्नवाङ्कविशोधनं कर्तव्यम्। ततस्तस्य सप्तविंशत्या भागमपहृत्यावशेषाङ्कसमं तत्पत्न्या नक्षत्रं वाच्यम्। अथ भ्रातुः पृच्छति तदा तत्काललग्ने राशिद्वयं दत्त्वा एतदेव कर्म कृत्वा तत् भ्रातुः नक्षत्रं वाच्यम्। अथ पुत्रस्य पृच्छति तदा तत्काललग्ने राशिचतुष्टयं दत्त्वा तदेव कर्म कृत्वा तत्पुत्रनक्षत्रं वाच्यम्। अथ शत्रोः पृच्छति तदा तत्काललग्ने राशिपञ्चकं दत्त्वा तदेव कर्म कृत्वा तच्छत्रुनक्षत्रं वाच्यम्। एतदुपलक्षाणार्थं त्रिराशिसहितात् तात्कालिकाल्लग्नात् तन्मित्रस्यापि वाच्यम्। नक्षत्रानयनं उपलक्षणार्थमेवं सकलमपि नष्टजातकं वाच्यम् ।।२।।

उक्त (पूर्वानीत) कला पिण्ड को ७ से गुणा कर २७ के भाग देने से जो शेष बचे तत् तुल्य संख्यक अश्विन्यादि क्रम से प्रश्नकर्ता का जन्म नक्षत्र समझना यदि वह नक्षत्र असम्भव अर्थात् (ज्ञात समय के आसन्न से न्यूनाधिक) प्रतीत हो तो आगत नक्षत्र में ९ जोड़ कर अथवा ९ घटा कर नक्षत्र का ज्ञान करना चाहिये । एवं इसी तरह यदि कोई अपनी स्त्री का नक्षत्र पूछे तो प्रश्नकालिक लग्न से सप्तम राशि द्वारा प्रश्नकर्ता की स्त्री का एवं तद्भावानुसार सहोदरादि का भी विचार करना । इत्यादि ।। २ ।।

यहाँ 'नवकदानविशोधनाभ्याम्' से द्रेष्काणवश ९ जोड़ना और घटाना, ऐसा पाठ संस्कृत टीकाकार-भट्टोत्पल मे रखा है एवं कोई (अन्य आचार्य) चरादिराशि से कहते हैं । किन्तु ये दोनों ही पाठ निर्मूल और युक्ति शून्य हैं । क्योंकि अज्ञात विषय ज्ञानार्थ ही प्रश्न किये जाते हैं–उससे जो वर्ष या नक्षत्रादि आते हैं, उसमें जोड़ने या घटाने की जो क्रिया कही गई है उसकी सम्भावना-असम्भावना समझकर ही निश्चय किया जाता है, न कि सर्वत्र !

यथा–प्रश्नकर्ता ने कहा कि मेरा जन्म वैशाख मास में पञ्चमी और पूर्णिमा के मध्य है, यदि कथित विधि से नक्षत्र संख्या ४ (रोहिणी नक्षत्र) आया, किन्तु रोहिणी वैशाख शुक्ल ५ से १५ के बीच असम्भव है । अत: सम्भव हेतु ४ में ९ जोड़ दिया जाय तो १३ वीं संख्या (चित्रानक्षत्र) में प्रश्नकर्ता का जन्म कहना युक्ति सङ्गत होगा, अन्यथा नहीं ।

कहने का तात्पर्य यह है कि–गणितागत संख्या प्रत्यक्ष में भी ठीक घटती हो तो वहाँ जोड़ने या घटाने की आवश्यकता नहीं है, जहाँ न्यूनाधिक जान पड़े वहीं उक्त क्रिया करें । यही मूल श्लोक का आशय है तथा मुनियों का भी अभिप्रेत है ।

वर्ष-ऋतु-मास आदि का ज्ञान—

वर्षर्तुमासतिथयो द्युनिशं ह्युडूनि
वेलोदयर्क्षनवभागविकल्पना: स्यु: ।
भूयो दशादिगुणिता: स्वविकल्पभक्ता
वर्षादयो नवकदानविशोधनाभ्याम् ।।३।।

वर्षर्तुमासेति। अथ वर्षाद्यानयनम्—लग्नं तावत्तात्कालिकं लिप्ता-पिण्डीकृतं राशिगुणकारहतं सम्भवात्तु ग्रहगुणकारहतमपि एकान्ते स्थापितं तद्दशादिगुणं कारयेत्। एतदुक्तं स राशिस्थानचतुष्टये कार्य:, एकत्र दशगुण: कार्य:, द्वितीये स्थानेऽष्टगुण:, तृतीये सप्तगुण:, चतुर्थे पञ्चगुण:। ततस्तेषां प्राग्वत् नवकदानविशोधनं कृत्वा स्वविकल्पैर्भागमपहृत्यावशेषं वर्षादयो ज्ञेया: ।।३।।

अब वर्ष ऋतु आदि समस्त विषय ज्ञान का प्रकार कहते हैं । जैसे पूर्व (नक्षत्रानयन में बतलाया जा चुका है, उसी प्रकार पुनः १०, ८ आदि गुणकों से गुणित पिण्ड में अपने-अपने विकल्प (जैसे वर्ष ज्ञान के लिए १२० के, ऋतु के ६, मास के १२, पक्ष के २, तिथि के १५, नक्षत्र के २७, दिन-रात्रि के २, वार के ७, लग्नराशि के १२, होरा के २, नवमांश के ९ इत्यादि) से भाग देकर जो शेष बचे उसमें पूर्ववत् ९ जोड़ या घटाकर वर्ष, ऋतु आदि समझना।।३।।

विज्ञेया दशकेष्वब्दा ऋतुमासास्तथैव च ।
अष्टकेष्वपि मासार्धं तिथयश्च तथा स्मृताः ।।४।।

विज्ञेया इति। तत्र ज्ञातं कस्माद्राशेः कस्यानयनं तत्र ज्ञानार्थमाह—एते चत्वारो राशयः स्थापितास्तेषां मध्ये यो दशगुणो राशिः तत्र प्राग्वदेव नवकदानविशोधनं कर्तव्यं एवं कृत्वा दशगुणकर्मयोग्यं स्थापयेत्। एवं पृथक्कर्मभूमिं स्थाप्य तस्य विंशत्याधिकेन शतेन भागमपहृत्य योऽङ्कोऽवशिष्यते तदङ्कसमं वर्षाणि जानाति इति वक्तव्यम्। तस्यैव षड्भिर्भागमपहृत्य तत्र योऽङ्कोऽवशिष्यते तदङ्कसमे शिशिरादारभ्यर्तौ जात इति वक्तव्यम्। तस्यैव कर्मयोग्यस्थराशेर्द्वाभ्यां भागमपहृत्य यदैकोऽवशिष्यते तदा ज्ञातर्तौ प्रथमे मासि जन्म इति वाच्यम्। शून्यमवशिष्यते तदा तद्द्वितीये मासि जातः। एवं कृत्वा दशहतः कर्मयोग्यो राशिरपास्यः। यस्य विंशत्यधिकवर्षशतादप्यधिकं जन्मतो व्यतीतं भवति तस्य नष्टजातकज्ञानोपायो नास्ति। योऽसावष्टहतो राशिस्तत्र प्राग्वदेव नवकदानविशोधनविधानं कृत्वा कर्मयोग्यराशिं स्थापयेत्। ततस्तस्य द्वाभ्यां भागमपहृत्य यद्येकोवशिष्यते तदा शुक्लपक्षे जात इति वक्तव्यम्। न किञ्चिदवशिष्यते तदा कृष्णपक्षे जात इति वक्तव्यम्। तस्यैव कर्मयोग्यस्य राशिः पञ्चदशभिर्भागमपहृत्य योऽवशिष्यते तदङ्कसमसङ्ख्यातिथौ जात इति वाच्यम्। एवं कृत्वाऽष्टगुणकर्मयोग्यो राशिरपास्यः ।।४।।

उक्त (पूर्वानीत) स्फुट कला पिण्ड को १० से गुणा कर वर्ष के विकल्प (१२०) से भाग देकर शेष तुल्य वर्ष एवं १० गुणित पर से ही ऋतु, मास समझना । तथा ८ गुणित कला पिण्ड पर से पक्ष और तिथि का ज्ञान करना।। ४ ।।

विशेष–स्फुट कला पिण्ड को १० गुणित करके १२० के भाग देने से जैसे वर्ष निकला है, उसी प्रकार १० गुणित अङ्क में ६ का भाग देने से शेष जन्म-कालिक शिशिरादि (अर्थात् १ शेष बचे तो शिशिर, २ से वसन्त, ३ से ग्रीष्म, ४ से वर्षा, ५ से शरद्, ६ से हेमन्त) ऋतु होती है तथा उसी १०गुणित अङ्क में २ का भाग देने से १ शेष बचे तो उक्त ऋतु का प्रथम मास शून्य शेष हो तो दूसरा मास जानना ।

एवं जब मास का ज्ञान हो जाय तो पिण्ड को ८ से गुणाकर २ का भाग देकर १ शेष से शुक्लपक्ष और शून्य शेष बचे तो कृष्णपक्ष समझना । तथा उसी (८ गुणित) पिण्ड में १५ का भाग देने से जो शेष बचे वह आये हुए पक्ष की वर्तमान प्रतिपदादि तिथि जाने ।।

दिन-रात्रि तथा नक्षत्रानयन—

दिवारात्रिप्रसूतिं च नक्षत्रानयनं तथा ।
सप्तसङ्ख्येऽपि वर्गे तु नित्यमेवोपलक्षयेत् ।।५।।

दिवारात्रीति। योऽसौ सप्तहतो राशिस्तत्र प्राग्वदेव नवकदानविशोधनं कृत्वा ततः कर्मयोग्यं राशिं स्थापयेत्। तस्य द्वाभ्यां भागमपहृत्य यद्येकोऽवशिष्यते तदा दिने जात इति वाच्यम्। अथ न किञ्चिदवशिष्यते तदा रात्रौ इति वक्तव्यम्। तस्यैव कर्मयोग्यराशेः सप्तविंशत्या भागमपहृत्य योऽङ्कोऽवशिष्यते तदङ्कसमसङ्ख्यके नक्षत्रे अश्विन्यादित आरभ्य जात इति वाच्यम्। अस्य कर्मणः पुनरपि विधानं नक्षत्रानयनस्य बाहुल्येनोपयोगि-त्वात्।।५।।

एवं ७ गुणित पिण्ड पर से दिन रात्रि और नक्षत्र का ज्ञान कराना ।। ५ ।।

विशेष–७ गुणित कला पिण्ड के जो अङ्क हों तो उसमें २ से भाग देकर १ शेष में दिन और शून्य शेष बचे तो रात्रि में जन्म कहना । तथा नक्षत्र जानने की विधि पूर्व कह चुके हैं ।

इष्टकाल लग्न होरा-नवमांशानयन—

वेलामथ विलग्नं च होरामंशकमेव च ।
पञ्चकेषु विजानीयान्नष्टजातकसिद्धये ।।६।।

वेलामथेति। यस्मिन्दिने पुरुषजन्म जातं तस्य दिनस्य प्रमाणं घटिकादिकं कार्यम्, अथ रात्रौ जन्म जातं तदा रात्रिप्रमाणं ततो योऽसौ पञ्चगुणो राशिः स्थापितः तस्य प्राग्वदेव नवकदानविशोधनं कृत्वा ततो दिनप्रमाणेन रात्रिप्रमाणेन च भागमपहृत्य यदवशिष्यते तस्मिन् काले दिनगते रात्रिगते च तस्य जन्म वाच्यम्। अथ विलग्नमिति काले ज्ञाते राश्यादिलग्नं कार्यम्। तत्र तस्य लग्नस्य होराद्रेष्काणनवांशद्वादशांशकभागाः कार्याः ततस्तस्य तात्कालिका ग्रहाश्च कर्तव्याः। ततो यथाभिहितेन विधिना दशान्तर्दशाष्टकवर्गादिरभिहितस्य फलानां निर्देशः कार्यः। एवं नष्टजातकं साधयेत् ।।६।।

एवं गुणित स्पष्ट कला पिण्ड पर से इष्टकाल, जन्मलग्न, होरा, नवमांश, द्वादशांश इत्यादि का ज्ञान करना ।। ६ ।।

विशेष–५ गुणित कला पिण्ड के जो अङ्क हो उनमें पूर्व साधित विधि से यदि दिन का जन्म आता हो तो दिनमान से और यदि रात्रि में जन्म हो तो रात्रिमान से भाग देने पर जो शेष बचे वह दिन का अथवा रात्रि का इष्टकाल होता है । आये हुए इष्टकाल पर से जन्मलग्न, होरा इत्यादि का ज्ञान करके नष्ट जन्माङ्ग बनाना चाहिये ।

उदाहरण–पूर्व साधित स्फुट पिण्ड ६६०६०३।२०है । इसको १०से गुणा कर १२० का भाग दिया तो ३३ वर्ष ४ मास प्रश्नकर्ता की आयु आयी। पिण्ड पर से जो वर्ष संख्या आवे वह यदि प्रष्टा की आयु के आसन्न ही देखने में आवे तब तो आगत संख्या तुल्य ही प्रश्नकर्ता की भी आयु बतावें अन्यथा यदि

प्रश्नकर्ता के वयस से न्यून या अधिक मालूम हो तो उसमें ९ को तब तक जोड़े या घटावे जब तक प्रष्टा के वयसतुल्य सम्भव हो ।

प्रयोजन–जन्मकालिक वर्ष मासादि से जातक के जीवन का फल मुनियों ने कहा है । यदि किसी को अपनी वयस का ज्ञान न हो और अपने जन्मसंवत्सरादि का फल जानना चाहे, वहाँ उक्त विधि से निश्चित किये हुये आगत वर्ष को वर्तमान संवत् में घटाने से शेष प्रभवादि नामक जन्म संवत्सर होगा, एवं तदनुसार फल कहे । आवश्यकता इस बात की है कि दैवज्ञ प्रश्नकर्ता के उन्हीं विषयों पर विचार करे, जिन्हें वह न जानता हो । इस प्रकार यत्न पूर्वक किया गया दैवज्ञ का परिश्रम असफल नहीं होता ।

वासुदेवभिधानेना मया काशीनिवासिना ।
श्रीसीतारामझानाम-गुरोः पदसरोरुहात् ।।
लब्ध्वा बोधलवं दृष्ट्वा कृतां भट्टोत्पलादिभिः ।
व्याख्यां मनोरमाञ्चापि क्वचिन्मूलविरोधिनीम् ।।
प्रत्यक्षदोषयुक्तां च तां संशोध्य प्रयह्नतः ।
कृता नृभाषया व्याख्या सदुदाहरणान्विता ।।
वर्षे जिननखैस्तुल्ये वैक्रमे मार्गशीर्षके ।
शुक्ले विश्वतिथौ भौमे सम्पूर्णाम्बानुकम्पया ।।

इति राजस्थानमण्डलान्तर्गत 'बिसाऊ' ग्रामनिवासि–श्री–नागरमल-गुप्तात्मजदैवज्ञवाचस्पति-श्रीवासुदेवकृत-लघुजातके सारार्थबोधिनीहिन्दीटीका समाप्ता ।

द्वादशभावनिरूपणम्

लग्नादि द्वादशभाव से विचारणीय विषय—

इस ग्रन्थ में लिखे हुए लग्नादि द्वादशभावों के ग्रहजन्य शुभाशुभ फलों का प्रभाव किस-किस भावों से किन-किन विषयों पर पड़ता है, प्रथम यह जानना अत्यावश्यक है । इसलिये किस भाव से किन विषयों का विचार करना चाहिये यह आर्षवचन के साथ विज्ञजनों के उपकारार्थ लिख देना उचित सनझता है । यथा–

मूर्तिमायुश्च कीर्तिञ्च साङ्गोपाङ्ग निरूयेत् ।
स्थितिं स्वरूपं सम्पत्तिं जन्मलग्नाद्विचिन्तयेत् ।। १ ।।

भाषा–लग्न (प्रथमभाव) से शरीर, रंग, आयु, कीर्ति, स्थिति, स्वरूप तथा सम्पत्ति सम्बन्धी का सांगोपांग विचार करना चाहिये ।। १ ।।

धनं सुखं च भुक्तिं च सत्यं वाक्पटुतामपि ।
सव्यनेत्रफलं चैव धनस्थानाद्विचिन्तयेत् ।। २ ।।

भाषा–धन (द्वितीयभाव) से धन, सुख, भोग, सत्यता, वाक्पटुता और दक्षिण नेत्र सम्बन्धी विचार करना चाहिए ।। २ ।।

सहजं विक्रमं कण्ठं क्षुधामाभरणानि च ।
पात्राऽपात्रफलं भावात् तृतीयात् परिचिन्तयेत् ।। ३ ।।

भाषा–तृतीयभाव से सहोदर, पराक्रम, कण्ठ, क्षुधा, भूषण और पात्रता-अपात्रता का विचार करना चाहिए ।। ३ ।।

मातरं वाहनं बन्धुं सुखं सिंहासनं गृहम् ।
मित्रं बाहुं भुवं भावाच्चतुर्थात् परिचिन्तयेत् ।। ४ ।।

भाषा–चतुर्थभाव से माता, वाहन, बन्धु, राज्यसुख, गृह, मित्र, बाहु सम्बन्धी विचार करना चाहिए ।। ४ ।।

पुत्रं बुद्धिं च मन्त्रं च देवताभक्तिमुत्तमाम् ।
हृदयं मातुलं भावात् पञ्चमात्परिचिन्तयेत् ।। ५ ।।

भाषा–पञ्चमभाव से पुत्र, बुद्धि, मन्त्र, भक्ति, हृदय और मातुल सम्बन्धी विचार करना चाहिए ।। ५ ।।

रिपुज्ञातिबलं रोगमुदरं शत्रुमेव च ।
षष्ठस्थानादिदं नाम तत्तन्नामफलं दिशेत् ।। ६ ।।

भाषा–षष्ठभाव से रिपु, ज्ञाति, बल, रोग, उदर आदि का विचार करना चाहिए ।। ६ ।।

कलत्रभोगं छत्रं दन्तनाभी च सप्तमात् ।
गुदं मरणकञ्चैवमायुः स्थानाद् विचिन्तयेत् ।। ७ ।।

भाषा–सप्तमभाव से स्त्री-सुख-भोग, छत्र, दन्त और नाभी सम्बन्धी रोग, एवं अष्टमभाव से गुह्याङ्ग, जीवन-मरण आदि का विचार करना चाहिए ।। ७ ।।

भाग्यं तीर्थं च धर्म च तपः स्थानादिति क्रमात ।
मानं राज्यं कर्म-कीर्ति व्यापारं दशमात् तथा ।। ८ ।।

भाषा–नवमभाव से भाग्य, तीर्थ, धर्म, सम्बन्धी एव दशमभाव से मान, राज्य, कर्म, कीर्ति और व्यापार इत्यादि का विचार करना चाहिए ।। ८ ।।

लाभं चैंवाऽग्रजं कर्णं जङ्घामेकादशाद् वदेत् ।
व्ययं पितृधनं वादं वामनेत्रं व्ययात् तथा ।। ९ ।।

भाषा–एकादश भाव से लाभ, ज्येष्ठ भ्राता, कर्ण, जङ्घा सम्बन्धी एवं द्वादशभाव से खर्च, पितृधन, वाद-विवाद और वामनेत्र का विचार करना चाहिए।। ९ ।।